Dhingra Family Foundation
DF
USA

विभोम स्वर

RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 6, अंक : 23
अक्टूबर-दिसम्बर 2021
मूल्य 50 रुपये

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

हे राम...!
नाटक
महेश कटारे

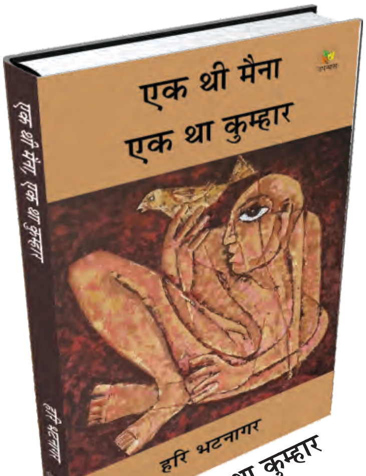

एक थी मैना, एक था कुम्हार
उपन्यास
हरि भटनागर

रज्जो मिस्त्री
कहानी संग्रह
प्रज्ञा

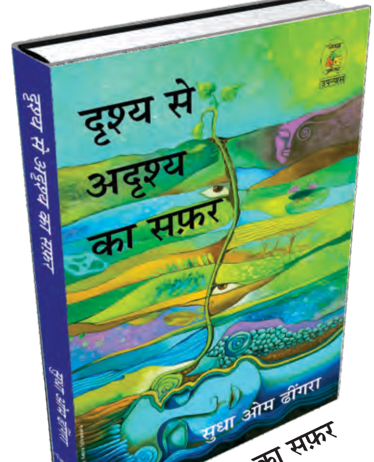

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
उपन्यास
सुधा ओम ढींगरा

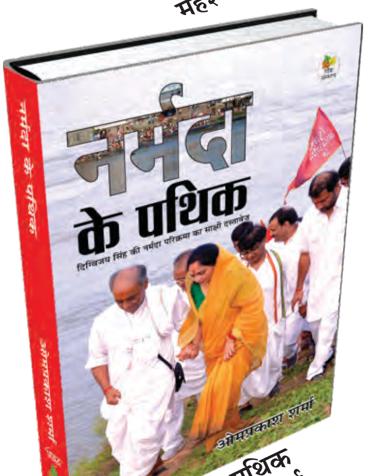

नर्मदा के पथिक
ओमप्रकाश शर्मा
यात्रा संस्मरण

एक टुकड़ा आसमान
उपन्यास
विनोद कुशवाहा

मेरी चुनिंदा कहानियाँ
कहानी संग्रह
अशोक गुजराती

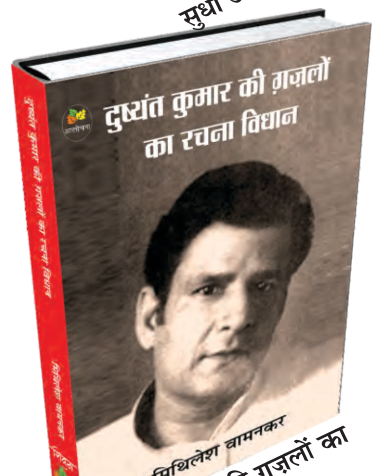

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का
रचना विधान
मिथिलेश वामनकर

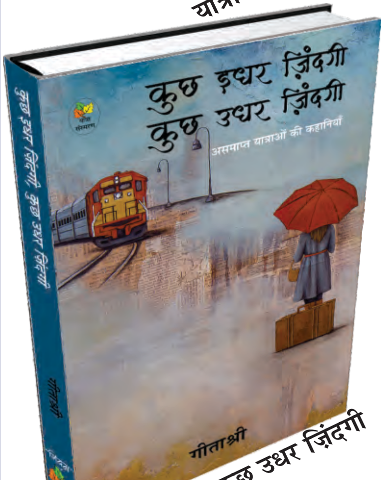

कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी
यात्रा संस्मरण
गीताश्री

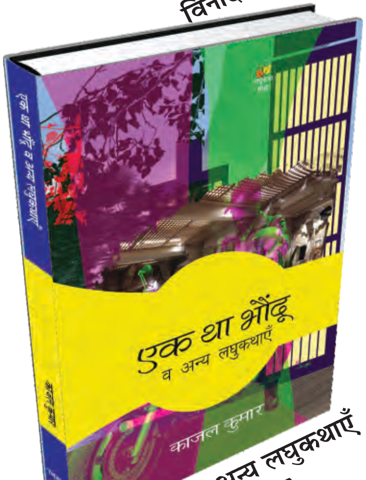

एक था भौंदू व अन्य लघुकथाएँ
लघुकथा संग्रह
काजल कुमार

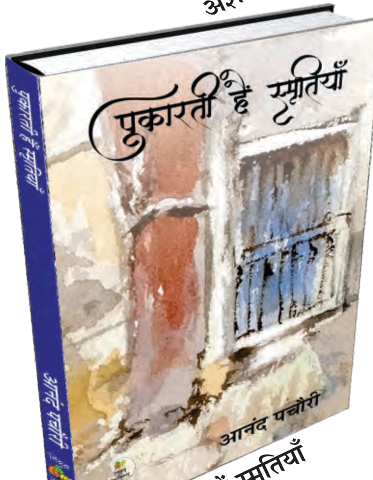

पुकारती हैं स्मृतियाँ
कविता संग्रह
आनंद पचौरी

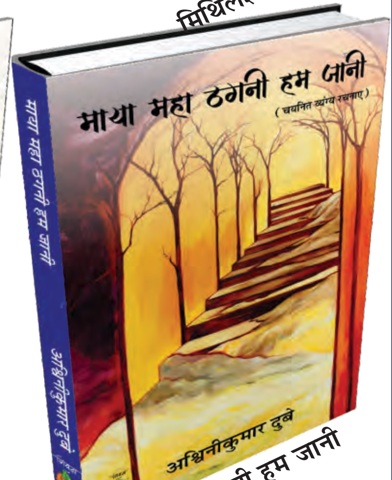

माया महाठगनी हम जानी
व्यंग्य संग्रह
अश्विनीकुमार दुबे

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 23, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2021
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

रेखाचित्र
जयंत देशमुख

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 23,

त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2021

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

विस्मृति के द्वार

'परेड, कानपुर'

उषा प्रियम्वदा 12

कथा कहानी

मैं लौट रही हूँ

उर्मिला शिरीष 18

तुम उसे तलाशने मत आना...

सैली बलजीत 21

कजरी का प्रेम

मुरारी गुप्ता 24

मोंटू

सरस दरबारी 26

पत्ते और डालियाँ

अनीता शर्मा 30

नाईन्टी नाईन रोज़ेस

ज्योत्सना सिंह 34

पिल्लू

सुनीता पाठक 37

नई क़लम

वाइड इफेक्ट

दर्शना जैन 40

भाषांतर

शिल्पी

बांग्ला कहानी

मूल लेखक : सत्यजीत राय

अनुवाद : सुचिस्मिता दास 42

नववर्ष का बलिदान

चीनी कहानी

लेखक: लू शुन

अनुवाद: विवेक मणि त्रिपाठी 46

बिना धूप के साये

पंजाबी कहानी

लेखक : तृप्ता के. सिंह

अनुवाद : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा 50

अंग्रेज़ी कवि जॉन हे की कविताओं का अनुवाद

अनुवाद- उषा देव 69

व्यंग्य

बाहुबली

सूर्यकांत नागर 55

कुटाई- ठुकाई- पिटाई

मदन गुप्ता सपाटू 57

बोध कथा - सम्राट, गुरु और पुतले

कमलेश पाण्डेय 59

संस्मरण

डॉ. कुँवर बेचैन- वो बेचैन मन

डॉ. अरुण तिवारी "गोपाल" 60

लघुकथा

मल भेद

सुभाष चंद्र लखेड़ा 49

आबरू

मनमोहन चौरे 56

दोहे

शिवकुमार अर्चन 58

कविताएँ

ब्रजेश कानूनगो 65

जावेद आलम ख़ान 66

राजीव कुमार तिवारी 67

मनीष कुमार यादव 68

ग़ज़ल

विवेक चतुर्वेदी 64

विज्ञान व्रत 70

गीत

सूर्य प्रकाश मिश्र 71

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

ज़रूरत है, अपने देश में हिन्दी को समृद्ध करने और युवा पीढ़ी में इसे लोकप्रिय करने की

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

भारत से मुझे कई शिक्षकों के ईमेल एक ऐसी समस्या को इंगित करते आए, जिससे मैं अनभिज्ञ थी। 1982 में शादी के बाद मैं विदेश आ गई और उसके बाद देश के हर क्षेत्र में बहुत तेज़ी से परिवर्तन हुए। तबदीली को हर वर्ष देखा पर उसकी गहराई को समझ नहीं पाई। अभिभावकों की सोच, सामाजिक मापदण्ड, शिक्षा के तरीक़े, सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों की कार्य प्रणाली तो पूरी तरह बदल चुकी है। अध्यापकों की ईमेल से कई बातें ऐसी पता चली हैं, जो मेरी कल्पना से भी परे हैं। ग़ैर सरकारी स्कूलों में हिन्दी शिक्षकों का वेतन अन्य शिक्षकों से कम होता है। स्कूल की असेंबली में भी हिन्दी वालों को स्थान नहीं दिया जाता। अगर अध्यापक बच्चों को हिन्दी का होमवर्क दे तो अभिभावक ही हिन्दी का होमवर्क नहीं चाहते। वे हिन्दी के होम वर्क का विरोध करते हैं। शिक्षक को प्रिंसिपल होमवर्क देने से मना कर देते है। अब शिक्षक हिन्दी सिखाए तो कैसे सिखाए! स्कूल में अगर कोई बच्चा हिन्दी का एक शब्द भी बोल लेता है तो उसे प्रत्येक शब्द 5 रुपये का फाइन हो जाता है और कई बार माँ-बाप को 50 रुपये तक फाइन देना पड़ता है। हिन्दी सिर्फ़ हिन्दी की क्लास में बोली जा सकती है।

यह सब पढ़कर कुछ क्षणों के लिए मैं स्तब्ध रह गई। जिस देश में अधिकतर लोग हिन्दी बोलते हैं। कई प्रदेश हिन्दी भाषी हैं; वहाँ हिन्दी की यह दशा! किसी हिन्दी प्रेमी ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। हिन्दी की संस्थाएँ जो विदेशों में आकर हिन्दी का प्रचार-प्रसार करती हैं, अपने ही देश में उनका इस ओर ध्यान नहीं गया। मैंने जब शिक्षकों से निवेदन किया, वे अपनी समस्याओं को किसी स्थानीय संपादक या पत्रकार से कहें, तो उन्होंने बड़ी उदास करने वाली ईमेल भेजी- ''सैंकड़ों संपादकों और पत्रकारों से संवाद साधा, पर किसी ने मदद नहीं की, क्योंकि उनके बच्चे, पोते-पोतियाँ, नाते-नातियाँ सभी इन्हीं स्कूलों में पढ़ते हैं। कोई इस सिस्टम से उलझना नहीं

चाहता।"

जिस समाज में अंग्रेज़ी बोलना एक स्टेट्स सिम्बल है, वहाँ ऐसी ईमेल्स से निराश नहीं होना चाहिए, पर मैं हुई। अंग्रेज़ी के वर्चस्व का कारण भी मैं समझती हूँ, रोटी-रोज़ी और साइंस की भाषा हिन्दी नहीं बन पाई और युवा पीढ़ी का अंग्रेज़ी के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। जिन स्कूलों में अंग्रेज़ी का बोलबाला है, फ्रेंच विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है, वहाँ हिन्दी का एक शब्द बोलने पर फाइन करना किस मानसिकता को दर्शाता है।

भाषाएँ अगर समाज को कुंठित करने लगें तो भविष्य में यह कभी भी लाभकारी नहीं होतीं। भारत ही एक ऐसा देश है, जिसकी अपनी कोई भाषा नहीं है।

सबसे ज़्यादा ताज्जुब मुझे होता है, जब वर्चुअल सेमीनार, वेबिनार, विमर्श, बातचीत में हिन्दी की वैश्विक स्थिति, हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार और चुनौतियाँ, विदेशों में हिन्दी, विदेशों में हिन्दी पढ़ाने की चुनौतियाँ। लंबी चौड़ी बातें की जाती हैं, पर देश के भीतर शिक्षा में, व्यवहार में, समाज में हिन्दी पिछड़ रही है, उस तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता। विदेशों में हिन्दी के लिए यूँ काम करना चाहिए, फलाँ तरीका अपनाना चाहिए, अरे भाई, जिस देश की भाषा है, वहाँ तो उसे स्थान दिलवाएँ, विदेशों में तो प्रवासी संघर्ष कर रहे हैं, बहुत सी संस्थाएँ हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगी हैं। विदेशों में हिन्दी विदेशी भाषा के रूप में विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। लोग गर्व से पढ़ते हैं। अमेरिका की हर स्टेट के बड़े-बड़े शहरों में शनिवार-रविवार को छोटे बच्चों से लेकर हाई-स्कूल के बच्चों को हिन्दी भारतीय समुदाय के केंद्रों में पढ़ाई जाती है।

मित्रो, ज़रूरत है, अपने देश में हिन्दी को समृद्ध करने और युवा पीढ़ी में इसे लोकप्रिय करने की। विदेशों में तो बहुत से हिन्दी-प्रेमी कार्य कर रहे हैं।

जब यह पत्रिका आपके हाथों में आएगी, दीपावली करीब होगी। उत्सव के उत्साह में इतने पटाखे मत चलाएँ कि वातावरण दूषित हो जाए।

दशहरा, दीपावली की विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की ओर से अंनत शुभकामनाएँ एवं बधाइयाँ!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

जीवन में आने वाली हर परिस्थिति को उसी प्रकार लेना चाहिए, जिस प्रकार कमल का पत्ता पानी को लेता है। अपने ऊपर उसे धारण भी करता है और उससे अपने आप को प्रभावित भी नहीं होने देता है। अधिक भार होने पर उसे नीचे गिरा भी देता है। धारण करने की यह कला ही जीवन जीना सिखाती है।

मित्रनामा

बढ़िया अंक के लिये बधाई

'विभोम-स्वर' का जुलाई-सितंबर 2021 अंक प्राप्त हुआ। सुधा जी आपकी बात से सहमत हूँ कि अब जीवन शैली पर तकनीकी का बोलबाला रहने वाला है। यह भी सच है कि जहाँ तकनीकी जीने का नया तरीका देगी वहीं व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकार बदलते हुए और अधिक सिमटते चले जाएँगे। अंक अपने आप में बहुत कुछ समेटे हुए है। ऊषा प्रियंवदा जी 'विस्मृति के द्वार' खोल कर पाठकों का हाथ पकड़कर झरोखों से झाँकते हुए अपनी य़ादों के गलियारों में लिये चलती हैं। प्रज्ञा पांडेय की "जूठा सेब", विकेश निझावन की "उसकी मौत", कादंबरी मेहरा की "कौन सुने", कामेश्वर की "सेहरे का सगुन", अरुण अर्णव की "देवता", छाया श्रीवास्तव की "सन्नाटा" सभी कहानियाँ अच्छी हैं। सबसे अधिक निकट और विश्वासी रिश्तों द्वारा घरों की चारदीवारी में होता सेक्सुअल एब्यूज़ कटु सच्चाई है। अरुणा सब्बरवाल की कहानी "अँधेरों के बीच" में रोज़ी की माँ ने बेटी पर बाप के द्वारा किये इस घृणित अपराध को दबा जाने की बजाए उसके खिलाफ आवाज़ उठाने का निर्णय लेकर नई रोशनी दिखाई है। सेवक नैयर की कहानी "स्वाभिमान" का शिवचरण जीवन के इतने कठिन दौर से स्वाभिमान के साथ रास्ते के उतार-चढ़ावों को पार करता हुआ दोबारा दोहरे संघर्ष की जगह आत्महत्या का रास्ता चुनता ज़िंदगी से भागता कमज़ोर लगा। "मिशन-एन.पी.ए."- डॉ. रमेश यादव की कहानी बैंकों के कामकाज, पीछे की राजनीति, भ्रष्टाचार, मीडिया की जोड़ तोड़ और खुदगर्ज़ सभ्य समाज की असभ्य तस्वीर पेश करती अच्छी कहानी है। थोक के भाव में रजिस्टर्ड लोकार्पिस्टों द्वारा किये जाने वाले पुस्तक विमोचनों और लोकार्पणों की बखिया उधेड़ता श्रीकांत आप्टे का व्यंग्य "लोकार्पण" बहुत अच्छा लगा। ज़ेबा अल्वी का संस्मरण "हम भी कमीने-तुम भी कमीने" बहुत कुछ कह गया। जो टुकड़ों में बँटे देश में नफ़रतों के शोलों के बीच ज़िंदगी गुज़ारते लोगों की मार्मिक दास्तान है। वाकई तकलीफ तो यही है कि बिखरी ज़िंदगी के उलझे धागों को सुलझाते दोनों तरफ के लोगों को वहाँ के लोगों ने दिल से स्वीकारा ही नहीं और ज़िंदगी को सुकून मिला नहीं। सच ही है नफ़रत की जड़ें इतनी गहरी होती हैं तब, जब उनकी सिंचाई दो-तरफा हो और आख़िरी पन्ना- बहुत सही पंकज जी इतनी जल्दी क्या है धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होए। बढ़िया अंक के लिये बधाई!!

-मंजुश्री, सं. कथाबिंब, ए-10 बसेरा, दिन क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-400088
मोबाइल:9819162949
ईमेल:kathabimb@gmail.com

000

मार्मिक चित्रण के साथ कहानी

'विभोम-स्वर' के जुलाई-सितंबर 2021 अंक में अदिति सिंह भदौरिया की कहानी 'आख़िरी ख़त' शुरूआत में कहानी पढ़ते हुए लगा कि यह भी आम कहानियों की तरह होगी। मन ने अनुमान लगाने का कार्य शुरू कर दिया था कि इसका अंत तो यही होगा, लेकिन सब कुछ धरा का धरा रह गया।

मार्मिक चित्रण के साथ आगे बढ़ती हुई कहानी, न सिर्फ़ अन्त तक बाँधे रहती है, बल्कि एक नई सीख भी देती है। बदलते समय के अनुसार लोग कुछ हट कर पढ़ना चाहते हैं। ख़ुशी की बात यह है कि यह कहानी आपको निराश नहीं करती, अपितु यह सोचने पर बाध्य करती है कि जो माँ, बेटी नहीं चाहती थी वह एक बेटी के लिए किस तरह से अपनी खुशियों को कुर्बान कर देती है।

अन्त पढ़कर अंतर्मन में एक भोजपुरी गाने का बोल खुद-ब-खुद गुनगुनाने लगा कि, 'दुनिया में सबसे ऊँचा माई वाला दर्जा...'

-यश यादव, मुंबई, महाराष्ट्र

000

शानदार खज़ाना

'विभोम स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' मेरी उन प्रिय पत्रिकाओं में शुमार हैं जिनके नए अंक की बेसब्री से प्रतीक्षा रहती है। एक साथ कई नई कहानियों से रू-ब-रू करवाती 'विभोम-स्वर' है तो दूसरी तरफ, प्रकाशित हुई किताबों के बारे में 'शिवना साहित्यिकी' जिस तरह परिचय करवाती है, उससे उस किताब को छूने-पढ़ने की इच्छा प्रबल हो उठती है। कई किताबें ऐसी होती हैं जिन्हें मैं भी पढ़ चुका होता हूँ, पर जब 'शिवना साहित्यिकी' में उस पर किसी की लिखी समीक्षा देखता हूँ तो मन यह जानने को उतावला हो उठता है, कि उस किताब के बारे में दूसरा क्या सोचता है? जो प्रभाव उस किताब ने मेरे मन पर छोड़ा, क्या वैसा ही प्रभाव वह दूसरे पर छोड़ पाई है? साथ ही यह भी जानने की उत्सुकता होती है कि ऐसा क्या विशेष है जो पढ़ते वक्त मुझसे छूट गया या मैं वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ रहा। किताबें पढ़ना ही बहुत नहीं होता, दूसरे उन्हें पढ़कर क्या राय रखते हैं, यह जानना भी ज़रूरी होता है, ऐसा मेरा मानना है।

सुधा ओम ढींगरा जी और पंकज सुबीर जी का आभार जो मुझे ऐसा शानदार खज़ाना उपलब्ध कराते हैं।

-सुभाष नीरव, नई दिल्ली

000

अप्रैल-जून अंक में प्रकाशित चौधरी मदन मोहन समर की कहानी "पानी की परत" पर खंडवा में चर्चा

संयोजन- गोविंद शर्मा

समन्वयक- शैलेन्द्र शरण

चौधरी मदन मोहन समर की कहानी"पानी की परत" परित्यक्त बच्चों की वास्तविक जीवन के प्रत्यक्ष समस्याओं से जुड़ी सच्ची कहानी प्रतीत होती है।

आसक्ति के आगोश में प्रेम न जाने कहाँ छू मंतर हो जाता है, और वासना के दलदल से जब तक युगल निकल पाता है तब तक मासूम बच्ची परित्यक्त हो जाती है। उसका क्या दोष।

भाग्य से नानू हैं अन्यथा तो वह, उफ्फ, कहाँ होती? कहानी का शिल्प अदभुत है, अंत तक उत्कंठा बनी रहती है, पाठक पूर्ण ध्यान से विषय वस्तु में डूबा रहता है। संपन्न समाज की उच्छृंखल जीवन शैली और विवाह जैसी

सामाजिक संस्था पर तीखी नज़र का परिचायक है लेखक का लेखन। सामाजिक सराकारों की उत्कृष्ट रचना। न्यायपालिका में दृष्टांत स्थापित कर सकने योग्य विषय वस्तु।

-मुनीश मिश्र

000

मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' से लेकर आज तक कई बार तलाक नामक दैत्य का समाज पर अत्याचार, दंपत्ति की नासमझी व अधैर्य और बालमन की व्यथा को समेटा हुआ साहित्य विविध रूपों में सामने आता रहा है। परंतु समर जी की कहानी 'पानी की परत' ने इस समस्या की एक और परत को 'सभ्यता' के द्वारा अपने नाना-नानी की व्यथा समझते हुए अपने अधिकारों हेतु आवाज़ उठाने के रूप में खोला है।

मम्मी पापा के पास समय न होना लेकिन तान्या के पिता द्वारा तुरंत 'सभ्यता' को बुला लेना 'सभ्यता' के मन के साथ पाठकों के मन पर भी चोट करता है। और अंत में न्यायाधीश द्वारा चार्जशीट पर आँसुओं के साथ हस्ताक्षर करना पढ़ने वालों की भी आँखें भिगो देता है। सचमुच यदि स्त्री-पुरुष मातृत्व-पितृत्व सुख का आनंद नहीं लेना चाहते हैं तो उन्हें संतान पैदा करने का और उसके साथ नाइंसाफी करने का कोई अधिकार नहीं है और यदि वे ऐसा करते हैं तो बच्चे द्वारा आवाज़ उठाना कदापि ग़लत नहीं है। आख़िर वह इसकी सज़ा क्यों भुगते? कथानक इसी संदेश को इंगित करने में पूरी तरह सफल रहा है।

-सरोज जैन

000

यह कहानी गहन चिंतन को विवश करनेवाली है। एक बहुत ही ज़रूरी विषय की कहानी। स्टेटस, फ़ैशन और आसक्ति के लिए तलाक़ लेनेवालों की कहानी। यहाँ जीवनसाथी नहीं चुने जाते बल्कि पार्टनरशिप की जाती है। 'तलाक़' विदेशियों का दिया और मूर्खों और धूर्तों द्वारा अपना लिया गया शब्द। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में भी तलाक़ के आवेदन, न्यायालयों में प्रतिदिन आते रहते हैं। आज़ादी के पचहत्तर वर्षों के बाद हम स्वतंत्रता से कहीं आगे निकलकर स्वायत्त हो गए हैं।

बहरहाल कहानी पर बात करते हैं। यह कहानी ऐसी ही पृष्ठभूमि पर बनी है जिसमें पहले प्रेमविवाह (यहाँ मुझे प्रेमविवाह कहना भी ठीक नहीं लगता क्योंकि यहाँ न तो प्रेम है न ही विवाह। सिर्फ़ शारीरिक आकर्षण और एक संविदा है जिसका टूटना तो तय है) होता है एक बच्ची सभ्यता जन्म लेती है और फिर तलाक़। कमाल की बात तो ये है कि सभ्यता नामक बेटी ने तो जन्म लिया लेकिन सभ्यता ने नहीं। यहाँ न चाहते हुए भी सभ्यता को अपने माता-पिता के विरुद्ध न्यायालय की शरण में जाना पड़ता है। यह सभ्यता की मजबूरी है। ऐसा नहीं कि न्यायालय से समन देने के पूर्व उसने अपने माता-पिता से संवाद करने का, उन्हें एक अवसर देने का प्रयास न किया हो।

कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। मुझे लगता है, केस जीतने के बाद भी सभ्यता के कपोलों पर 'पानी की परत' तो बनी ही रहेगी, क्योंकि उसे अपने माता-पिता के स्नेह की चाह है, लाख रुपये महीने की नहीं। इस 'पानी की परत' के साथ ही उसे जीना है। कहानी एक गम्भीर प्रश्न करती है कि ऐसी सभ्यताओं का अपराध क्या है?? और उनका भविष्य कैसा होगा??

एक अच्छी कहानी के लिए साधुवाद।

-वैभव कोठारी

000

विभोम-स्वर में प्रकाशित चौधरी मदन मोहन समर की कहानी "पानी की परत" आधुनिक विलासिता पूर्ण जीवन शैली के माता-पिता से आहत नाबालिग बालिका "सभ्यता" की मुसीबतों की कहानी है।

माता-पिता अपने शौक, ज़्यादा से ज़्यादा कमाने की भागदौड़ और देह सुख की स्वच्छंदता के कारण तलाक लेकर छोटी बालिका सभ्यता को उसके हाल पर छोड़ देते हैं। माता-पिता के सुख से वंचित सभ्यता को वृद्ध नाना के घर शरण मिलती है। किंतु वृद्ध नाना की अस्वस्थता के चलते आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है। और फिर शुरू होता है बालिका के हृदय में परिस्थितियों से विद्रोह कर क्रांतिकारी कदम उठाने का आंदोलन। माता पिता के विरुद्ध बालिका अपने भरण-पोषण के लिए न्यायालय में केस दायर कर देती है।

बस यह कहानी का कथानक है। इस कहानी के माध्यम से विचारणीय यह है कि तलाक शुदा माता-पिता के संतानों की पोषण, सुरक्षा तथा माता-पिता के नैसर्गिक प्रेम के अभाव की चिंता फिर कौन करेगा। इस अत्याधुनिक और पाश्चात्य संस्कृति जीवी समाज किस दिशा में जा रहा है। परिवार बिखर रहा है और इसका कुप्रभाव सबसे अधिक बच्चों के भविष्य पर हो रहा है। यदि हम अपने आस-पास देखेंगे तो ऐसे उदाहरण मिल ही जाएँगे। कहानी ने समाज में व्याप्त इस ज्वलंत प्रश्न को बड़ी ताकत से उठाया है और पाठकों को इसका उत्तर खोजने के लिए प्रेरित किया है। क्योंकि इसका उत्तर तो आख़िर समाज को ही खोजना है। न्यायपालिका से प्रत्येक प्रकरण में न्याय पाना इस प्रश्न का स्थाई हल नहीं है।

कहानी की भाषा में लालित्य है सामाजिक सरोकार की यह कहानी उत्कृष्ट और समाज को जागृत करने में सफल हुई है।

-रघुवीर शर्मा

000

कहानी वह होती है जो पाठक को चिंता में डाल दे। चिंतन उसके अचेतन मन तक घर कर जाए और इतने प्रश्न खड़े कर दे कि उत्तर खोजने की दिशा में पाठक खुद ही खो जाए। निश्चित ही कहानी किसी सत्य को बयाँ करती है। कुटुंब न्यायलय से शुरू हो कर अतीत में झाँकती हर एक परत जो संबंधों की भी है और पीड़ा की भी जो अश्रु पानी हो जाते रहे बार-बार लेकिन सश्रम रोके जाते रहे। मासूम सभ्यता का दोष क्या था? लेकिन दोष था भी। जन्म के साथ ही प्रारब्ध का तय हो जाना सभी की नियति है।

दैदीप्य और कृति की भोग विलासिता, सोशल मीडिया का असर और उम्र का भटकाव सामाजिक बंधन तक को लील गया। हाई प्रोफ़ाइल जीवन शैली क्या हर तरह के अपराध करने की इजाज़त देते है ? या अपराध सिर्फ सामान्य प्रोफ़ाइल वालों के ही होते हैं।

मार्मिक दृश्य, बूढ़े हो चले नाना नानी की ज़िम्मेदारी की ताक़त की टूटन है जो मन की भी है, भरोसे की भी और क्षीण होते शरीर की भी है।

कृति और दैदीप्य इतने अधिक स्वार्थी कैसे हो गए? क्या सच में माता-पिता की यह परिभाषा भी हो सकती है ? अचंभित करता है।

हर एक घटना क्रम पाठक को बाँधे रखता है। अपने ही मन को टटोलता हुआ कि सोशल मीडिया हमें भी पंगु ही बना रहा है। वर्चुअल रिलेशनशिप ज़्यादा हावी होते जा रहे हैं जो इस कहानी के पात्रों में परिलक्षित होता है। सभ्यता तो बेटी है जो कटाक्ष है समाज पर। बिंदास व्यवहार किसे आकर्षित करता है जो स्वयं ही संबंधों में कमज़ोर हो, बस यही हुआ आकर्षण को ही वास्तिविकता मान कर छल करना और छले जाना जो अंतत: ठहरता तो है लेकिन तब जब कोई और ऑप्शन नहीं रह जाता। पानी की परतों में भीगी हुई यह रचना मेरी भी आँखें कई बार नम कर गई। कलेजा मुँह को आ गया कि अंत में विद्रोह ही जन्म लेता है। सभ्यता का अधिकारों के लिए न्याय की शरण में जाना ही शर्मसार कर देना जैसा ही है। मनोविज्ञान यह कहता है कि मन की संतुष्टि और संबंध पर्याय हैं।

बेहद कुशलता से बुनी गई कहानी में दैदीप्य और कृति का खालीपन भी महसूस होता है चाहे वे स्वीकार न करें लेकिन नाना नानी की परवरिश भी एक प्रश्न ही है। बेटी की बेटी को सँभालना भी सज़ा रूपी परिस्थिति है।

लंबी होने के बावजूद झकझोरने वाली कहानी। रोचक नही कहूँगी क्योंकि इस तरह की कहानी का अपना एक स्वाद होता है जो कसैला भी है और खारा भी। पानी की परत बार-बार मन को खारा करती रही। अंत में 'पानी की परत' भी फूटे बाँध के सैलाब की तरह बह निकली। नि:शब्दता ही अंत है।

-डॉ.रश्मि दुधे

000

शेक्सपियर की उक्ति "नाम में क्या धरा है" को सर्वथा नकारते समर जी की लंबी कहानी का शीर्षक, सोचने के अनेक सूत्र, वड़ीलों के अनुभव सार, वैज्ञानिक या यूँ कहें प्रकृति के कालचक्र के समुद्र मंथन से निकले अमृत एवं विष दोनों को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देता है, जिसमें हलाहल की मिक़दार ज़्यादा है।

दैदिप्य आनंद, कृति और सभ्यता की ये कहानी परिवार नही, उस समाज की कहानी है, जिसमें, बेलगाम आधुनिकता के रंग से दैदीप्यमान दैदिप्य एवं तथाकथित नारी स्वातंत्र्य की आड़ में अनुचित लाभ की 'रचना', कृति के बेमेल योग से मार्मिक सच 'सभ्यता' की नियति पाठकों को पल-पल भिगोती, आक्रोशित करती, सभ्यता के समर्थन में मुट्ठियाँ उठाने मजबूर कर देती है।

बिना लगाव, समर्पण के बेमेल विवाह का अंत अलगाव से तो होता ही है, पर अधिक त्रासद उनका पुनर्विवाह कर संतति युक्त हो जाना लगता है। स्नेहिल पर अशक्त नानी-नाना की शारीरिक से अधिक आर्थिक निरूपायता, सभ्यता के मन के ठहरे पानी को इतना उद्वेलित करती है कि, वह सारे तटबंधों को तोड़ विध्वंसक हो, अपने जन्मदाताओं के खिलाफ न्यायालय में जा खड़ी होती है।

समर जी की सशक्त कलम, समाज में सर्वव्याप्त प्रवृत्ति पर बहुत खूब चली, और चिंतन के अनेकानेक सूत्रों में से एक मर्यादा की अदृश्य सीमारेखा की आवश्यकता को आलोकित कर गई। आधुनिकता किसी भी परिवार, समाज, देश को स्वीकार्य होती है, पर तटबंध के साथ। हर कहीं ये तटबंध आवश्यक इसलिए होते हैं, ताकि वे बेलगाम कोसी और ह्वांगहो नदी का रूप ले, बिहार और चीन की भाँति समाज का दुख, प्रतिमान न बन जाए।

नाम व अर्थ से सर्वथा प्रतिकूल कथा नायक न दैदिप्य हैं, न ही आनंद का प्रतीक और कृति न जाने किस संस्कार की रचना हैं। अमीरी, तथाकथित आधुनिकता के रंग में रँगे दो अति स्वतंत्र युगल का ऊपरी आकर्षण से मिलना, जुड़ना फिर अलग हो जाना उस 'सभ्यता' को जन्म देता है जो ऐसी मानसिकता वाले माता-पिता की संतान होने के कारण अनाथ सी होकर नाना-नानी की आश्रित है।

वैसे भी सभ्यता संस्कार को सँभालने का ज़िम्मा पिछली, जीर्ण, असहाय, अशक्त पीढ़ी पर थोप देने का रिवाज सदियों से है।

नई आधारहीन, परित्यक्त सभ्यता इतनी दमित, भ्रमित होती है कि उसके हृदय में पल रहे विद्रोह, असंतोष, दमन और जिजीविषा ज्वालामुखी की तरह फट जाते हैं। यह विस्फोट नायिका सभ्यता, उसके नाना नानी को राहत, आर्थिक सम्बल दिलाता है और देवदूत सदृश्य उसकी सहेली के पिता को विजय।

यथा- अपेक्षाओं के पहाड़ से निकले झरने, अधिकारपूर्वक समुद्र की विशालता को तत्काल पा लेना चाहते हैं। या वह नदी जो निरंतर बहती है, दुनिया के अवशिष्ट अपने में समेटती, शनै: शनै: मीठी होती नदी जानती है समुद्र को पाया नहीं जाता, समुद्र हुआ जाता है। कितनी गहन गंभीर बात कितनी सहजता से समरजी कह गए।

अपना मीठापन, अपने अस्तित्व को खारे पन में समाप्त कर देना ही शायद त्याग की उच्चतम सीमा है। और यही त्याग इतनी सदियों से पुरुष, नारी और बच्चों को परिवार और समाज में परिवर्तित करता आया है।

और इसका विखंडन पानी की वो ठहरी परत करती है जो पानी में बने तो जलकुंभी और आँखों में रुके तो नफ़रत पैदा कर देती है।

उत्कृष्ट रचना हेतु अभिनंदन।

-राजश्री शर्मा

000

कहानी का केंन्द्र सभ्यता है। यह सभ्यता वह सभ्यता है जो इस आधुनिक दौर में अपने अस्तित्व के लिये प्रयत्नशील है। एक षोडषी जो अपने माता-पिता के वास्तविक स्नेह से वंचित है। उसे माँ की ममता का भान नहीं है। वह नाना-नानी के सान्निध्य में पली बढ़ी जबकि माता- पिता अपने अपने दैहिक आकर्षणों में मस्त हैं। मानसिक सुख शायद उनके पास नहीं। न ही वह सभ्यता को मिला। मदन मोहन सिंह समर की यह कहानी हमें आधुनिक हाईप्रोफाइल जीवन शैली के दुष्प्रभावों से परिचित कराती है। जहाँ अपनी ही संतानों के प्रति संवेदनहीनता हद दर्जे तक हैरान करती है। कहानी अपने भाषा शिल्प

और कथानक के अनूठे से बाँधे रखती है। उनका निरीक्षक स्वभाव, परिस्थितियों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक स्तर पर करते चलते हैं। एक बेहतरीन कहानी।

-सुधीर देशपांडे

000

कहानी "पानी की परत" वैचारिक पृष्ठभूमि की बेहतरीन कहानी है, गहरे चिंतन को व्यक्त करनेवाली सोच को अपने में समेटे बहुत-बहुत अच्छी पानी की परत आधुनिकता की होड़ में अंधे होते व बिखरते परिवार की अभिव्यक्ति है एक सर्वव्यापी चिंता है भौतिकवादी व अपने शौक की पूर्ति के कारण रिश्तों के बिखराव की परिस्थितियों को बहुत ही सूक्ष्मता से परोसती सोच जहाँ तलाक की आग से परिवार जल जाता है और उसकी आँच से झुलसती है नन्हीं बालिका जिसे आपसी कुंठाओं की बलि चढ़ना पड़ता हैं। और ऐसे विकट समय में बूढ़े नाना का सहारा नहीं मिलता तो बालिका के भविष्य एक गहरी चिंता को आवाज़ देता है। नाना के अस्वस्थ जीवन व आर्थिक संकट की परिस्थिति का जो चित्र समर जी ने खींचा है वह समाज को सोचने में मजबूर करता है।

पति-पत्नी के आपसी कलह के कारण भविष्य के अंधकार को प्रस्तुत किया है। आजकल पाश्चात्य संस्कृति की गोदी में दम तोड़ती हमारी संस्कृति के प्रति लेखक की कलम पुरज़ोर तरीके से चीखती हुई दिखलाई देती है।

हर दृष्टि से उत्तम कहानी।

-सन्तोष चौरे चुभन।

000

कहानी अति संपन्न अल्ट्रा माडर्न पिता दैदिप्य और माँ कृति के दायित्वहीन पालकों के अपनी बेटी सभ्यता के प्रति क्रूर व्यवहार की कथा है। शारीरिक संबंधों के भोग को आनंद और खुशी का आधार मानने वाले हृदयहीन माता-पिता की उपेक्षित पुत्री की परवरिश नाना - नानी करते हैं जिनके वृद्ध होने पर नातिन सभ्यता इस बात को लेकर चिंतित है कि वृद्ध होते नाना - नानी उसे कब तक पालेंगे। वह अपने माता - पिता से इस समस्या पर बात भी करना चाहती है किंतु धनांध पालकों के पास उससे बात करने का समय नहीं। आख़िरकार सभ्यता अपने खर्च की माँग करते हुए अदालत का दरवाज़ा खटखटाती है जो उचित भी है।

माना कि अदालत उसे जीवन निर्वाह खर्च दिलवा भी देगी लेकिन माता-पिता के प्यार से वंचित सभ्यता के मन के घावों को कोई अदालत नहीं भर सकती।

यह कहानी एक सामाजिक बुराई को सामने लाती है जो अधिक धनी समाज में आम बात है। कहानी में उनकी लाइफ स्टाइल, स्वच्छंद जीवन की लालसा के कारण हुए तलाक तथा भोग के लिए नए साथी से पुनर्विवाह की घटनाएँ कथा के मूल को पाठकों के समक्ष पूरे सामर्थ्य से प्रस्तुत करती हैं। मैं ऐसा मानता हूँ कि कहानी में चित्रित समस्या निजी समस्या है जिसके समाधान का समाज के पास तो कोई विकल्प है ही नहीं।

कहानी की भाषा और शिल्प बहुत अच्छा है।

-कुँअर उदयसिंह अनुज

000

लीगली इस कहानी में यह कमी रह गई है। सामान्यत: दोनों पक्ष की सहमति से भी तलाक़ के प्रकरण में नाबालिग बच्चों के भविष्य को लेकर निर्णय के बाद ही तलाक़ की आज्ञप्ति पारित होती है। सभ्यता के भविष्य को सुरक्षित किए बिना तलाक़ नहीं हो सकता था।

-महेश जोशी

000

अपनी दैहिक कामनाओं की पूर्ति हेतु आकर्षण के वशीभूत होकर किया गया विवाह वह भी पार्टनरशिप मानकर संबंध स्थापित करना, अत्याधुनिक जीवनशैली के चलन में आ गया है। देहाकर्षण खत्म करार भी ख़त्म, परिणामस्वरूप तलाक़।

जबकि विवाह संबंध दैहिक आकर्षण के साथ मन की आंतरिक निर्मलता भी होता है, जो संबंधों को घनीभूत करता है।

प्रस्तुत कहानी पानी की परतें बहुत ही संवेदनशील कहानी है, और प्रयुक्त भाषा एक तरह से गद्य कविता की तरह है।

जब पति-पत्नी दोनों विवाह को अटूट बंधन न मानकर एक अनुबंध मानते हुए चलते हैं तो वे इस बात से भी लापरवाह हो जाते हैं कि विवाह के बाद जन्म लेने वाले बच्चे का क्या होगा।

इस कहानी के केंद्र में पति दैदीप्य और पत्नी कृति की पुत्री सभ्यता पर केंद्रित है। दोनों पति-पत्नी सभ्यता के प्रति निर्मोही हैं। जबकि वह उनकी पहली संतान है। यहाँ कृति जो उसकी माँ है, का सभ्यता के प्रति रूखा व्यवहार, एक संवेदनशील व्यक्ति को आहत करता है। माँ-बाप होते हुए भी वह याने सभ्यता नाना-नानी के पास रहकर बड़ी होती है। पूरी कहानी में पुत्री सभ्यता की भावनाओं की परतें हैं, जो उसके सजल नयनों से छलकती रहती है। अंतत: नाना-नानी की वृद्धावस्था देख वह अपने भरण पोषण के लिए कुटुंब न्यायालय में अपना अधिकार पाने के लिए वाद पत्र दाख़िल कर देती है। अत्याधुनिक और भौतिकता की चकाचौंध के प्रति मोहान्धता के इस दौर में युवक-युवती यह भूल जाते हैं कि हमारे प्रथक होने से, हमारे बच्चों के जीवन पर इसका क्या असर होगा।

कहानी बहुत ही मार्मिक और हृदय को छू जाती है।

-अरुण सातले

000

यूँ ही नहीं सागर मिलता, सागर होना होता है नदी को, सीमेंट के मकान में रिश्ते रेत से भुरभुरे हो गए है ये वाक्यांश कितनी गहराई लिए हैं एक तरह से कहानी का निचोड़ तो यहीं मिल जाता है। झरनों की आकुलता तत्काल सागर मिल जाए और इसी अकुलाहट में कँटीले रास्तों की उलझन में दुर्गंध युक्त ठहराव जो पानी के अस्तित्व को समाप्त कर देता है।

नदी कितनी कुछ मिठास लेती है रास्ते की उलझनों से लेकिन प्रेम की पराकाष्ठा में स्वयं खारी हो जाती है बिना किसी संकोच।

क्यों यह आज की पीढ़ी नहीं सोच पाती कि ईश्वर प्रदत्त ये देह, यह अर्थ सभी व्यर्थ है यदि इनमें चरित्र, शालीनता, का सौंदर्य नही। अपनी ज़िद, अपने शौक, अपनी स्वच्छंदता,

स्वतंत्रता की खातिर कितनी सभ्यताओं की बलि देंगे?

सभ्यताओं को निखरने में यूँ भी सदियों, वर्षों के नेह, प्रेम, सम्मान, परवाह, देखभाल,की आवश्यकता होती है तब कहीं एक स्वस्थ समाज, परिवार,पीढ़ी का निर्माण होता है। क्यों इस तरह सभ्यताओं को सरे राह उखाड़ कर खरपतवार बनाया जा रहा है ये अगर विषैली हो गई तो परिवार का अस्तित्व तो समाप्त ही हो जाएगा। रिश्ते मैले हो जाएँगे, फिर मानव एवं जानवर का भेद समाप्त।

उक्त कहानी समाज को एक गहन चिंतन की ओर ले जाती है। हम कितने आधुनिक हुए हैं कि हमने अपने आप को भुला दिया। निरीह बचपन जिसे नदी से सागर की विशालता में तब्दील होना था, पानी की परत में सिमट गई, वह भी उस चट्टान की वजह से जो उसके जन्म का कारक थी। जो अपने में गहन लावा समेटे अंदर ही अंदर एक सुनामी बन केवल विनाश का सबब ही बनेगी।

कहानी वास्तव में झकझोरने, समाज को सोचने युवा पीढ़ी के लिए अनेकों प्रश्न छोड़ती है, किसका वरण करेंगे विनाश या सभ्यता का? एक उत्कृष्ट कहानी, कथाकार की लेखनी को नमन साधुवाद।

-आरती डोंगरे

000

अप्रैल-जून अंक में प्रकाशित सुमन घई की कहानी "छतरी" पर खंडवा में चर्चा

संयोजन- गोविंद शर्मा

समन्वयक- शैलेन्द्र शरण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समय-समय पर यह तथ्य सिद्ध होता ही रहता है। सामाजिक जीवन में जब तक मनुष्य के अहंकार की तुष्टि होती रहती है उसे अपने जीवन में अन्य लोगों का महत्त्व ज्ञात नहीं हो पाता है लेकिन जब कोई व्यक्ति कहीं एकाकी हो तब उसे परिवार तथा समाज का मूल्य ज्ञात होता है।

इस कहानी में भी कथानायक, स्वकेंद्रित जीवन जीने के आदी हैं लेकिन पत्नी की मृत्यु के एक लंबे समय उपरांत जब एकाकी जीवन की नीरसता खलने लगती है,तब भी अपने परिवार के साथ रहने में उन्हें एक बाधा, एक हिचक अनुभव होती है।

मंदिर में जाकर धीरे-धीरे, लोगों से सहज होने और उनसे अपने अहसास बाँटने को छतरी के आदान-प्रदान के प्रतीक रूप में कुशलता से प्रयुक्त किया गया है।

अंत का एक घुटन भरा दुखांत न होकर एक उजास भरा सुखांत होना इस कहानी को इसी कथानक पर बनी अन्य कहानियों से भिन्न बनाता है। लेखक महोदय को एक बढ़िया कहानी के लिए हार्दिक बधाई।

-गरिमा चौरे

000

श्री सुमन कुमार घई की कहानी पढ़ी। कहानी का जो ताना-बाना सुरेंद्र जी के आसपास बुना गया है उससे ज़ाहिर है कि व्यक्ति कितना भी संपन्न हो, रिज़र्व नेचर का हो, स्वयम् को विशिष्ट समझता हो लेकिन जीवन में एक समय ऐसा आता है जब वह इस एकाकीपन से ऊबकर सामाजिक होना चाहता है। लोगों से बातचीत करना चाहता है, मिलना जुलना चाहता है। सुरेंद्र जी इतने सख्त मिज़ाज हैं कि वे अपने बेटों, बहुओं और पोते - पोतियों से भी दूर रहे। लेकिन जानबूझकर अपना नाम पता लिखी छतरी को यात्रा के दौरान भूलकर लोगों से जुड़ने की शुरूआत करते हैं और उनकी यह सामाजिक होने की युक्ति मंदिर वाले शर्मा जी से मिलकर पूर्ण होती है जहाँ वे अपना छतरी को स्थाई रूप से सभी लोगों के उपयोग के लिए छोड़कर अपनी सामाजिक होने की यात्रा का समापन करते हैं और अपने लेखा ज्ञान का उपयोग मंदिर के हिसाब - किताब में करके वहाँ समय व्यतीत करते हैं।

छतरी पर नाम पते का टैग लगाकर भूलना और यह उम्मीद रखना कि छतरी लौटकर उन तक अवश्य आयेगी और वे इस बहाने लोगों से मिलने - जुलने लगेंगे, यह युक्ति विदेश में ही सफल हो सकती है। हमारे देश में यह प्रयोग कभी भी सफल नहीं हो सकता। इसीलिए कहानीकार ने कैरेक्टर और स्थान भी विदेश ही चुना है।

कहानी में यह छतरी के प्रयोग का नयापन इसे रोचक बनाता है। यह रोचकता अंत तक बनी रहती है। उन्हें बधाई।

-कुँअर उदयसिंह अनुज

000

यह कहानी बिल्कुल नए आयाम छूती है। कहानी कनाडा में बसे एक समृद्ध परिवार की है। जिसमें सुरेन्द्र नाथ वर्मा एक समृद्ध सी ए हैं जोकि रिटायर्ड हैं। उनके दो लड़के हैं भरा पूरा परिवार है। दो वर्ष पहले उनकी पत्नी की मृत्यु हो जाती है। वे अकेले हो जाते हैं। वे बहुत ही स्वाभिमानी और अनुशासित व्यक्ति हैं। रिटायरमेंट के बाद वे स्वतन्त्र और अपने अनुशासन के साथ रहना चाहते हैं। उनके लड़के भी वेल टू डू हैं। और माँ के न रहने पर उन्हें अपने साथ रखना चाहते हैं। किन्तु वर्मा जी उनके साथ नहीं जाते हैं। अपने घर में ही अकेले रहने लगते हैं। कुछ दिनों में ही उन्हें अकेलापन और बुरा लगने लगता है। और बारिश आ जाती है जिससे बचने के लिए वे छतरी साथ रखने लगते हैं।

असल में यही छतरी इस कहानी की शेडो हीरो है। जिसके कारण कई लोगों से उनकी मुलाकात होती है। और अंत में एक ग़रीब मन्दिर के व्यवस्थापक शर्मा जी से मुलाकात होती है। शर्मा जी मन्दिर के हिसाब किताब के बहाने उन्हें अपना दिली दोस्त बना लेते हैं। सी ए होने के नाते वे मन्दिर की वित्तीय व्यवस्था सँभाल लेते हैं। जिसकी बदौलत मन्दिर में आने वाले उन सभी सैकड़ों लोगों के वे अंकल बन जाते हैं। शर्मा जी और वे लोग वर्मा जी का पूरा ख़याल रखते हैं। उन्हें महसूस होता है कि जैसे उनका बहुत बड़ा परिवार है। जो उनकी खुशी का कारण है। एक दिन जब शर्मा जी उन्हें छतरी साथ ले जाने की याद दिलाते हैं। तब वे कहते हैं इसे यहीं टँगी रहने दो जब जिसको ज़रूरत होगी इसका उपयोग कर लिया करेगा।

कहानी की इस अंतिम पँक्ति में लेखक ने बहुत गूढ़ अर्थ डाल कर कहानी को शिखर पर पहुँचा दिया है। संदेश यह कि एक अनुभवी बुद्धिमान और विशेष शिक्षित बुज़ुर्ग समाज के

लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। यदि समाज चाहे तो उसका अपनी कठिनाइयों में उचित उपयोग कर उसके अनुभव का बेहतर लाभ ले सकता है। विशेष कहन, मनोहारी शिल्प और उद्देश्यपूर्ण कथ्य के साथ कहानी पठनीय और आज के बुज़ुर्गों व बच्चों के लिए शिक्षाप्रद है।

-श्याम सुंदर तिवारी

000

सुमन कुमार घई जी की कहानी एक ऐसे इंसान जिनका नाम सुरेन्द नाथ वर्मा है, की कहानी है। सुरेंद्र जी रिटायर्ड व्यक्ति हैं। दो बेटे बहू दोनों के दो दो बच्चे होने के बावजूद वे अकेले रहते हैं। पत्नी का स्वर्गवास होने को दो वर्ष बीत चुके हैं। अकेले रहने का एक मात्र कारण अपनी निजी स्वतंत्रता में किसी का हस्तक्षेप उन्हें बर्दाश्त नहीं है। उनकी दिनचर्या भी एकदम संतुलित। न किसी से निरर्थक बातें करना और न ही किसी से मेल मुलाकात। इस प्रकार हम देखें तो यह कहानी उस आदमी की है जो स्वकेन्द्रित होने के साथ ही अल्पभाषी भी है। अकेलेपन और एक सी दिनचर्या उन्हें नीरस लगने लगती है। धीरे धीरे वे अपनी दिनचर्या में परिवर्तन लाते हैं, घूमने जाते समय छतरी जिस पर उनके नाम की चिट लगी है, रखने लगते हैं।

यही छतरी दूसरे लोगों से जुड़ने का माध्यम बन जाती है। अर्थात् छतरी कहीं भूलने लगते हैं, तो लोग उन्हें छतरी उनकी छतरी का ध्यान दिलाते हैं। इतना सा संवाद होने पर भी उन्हें बहुत अच्छा लगने लगता है। वे छतरी को हमेशा पास रखने लगते हैं, ताकि उस बहाने दूसरों से संवाद होता रहे। इसी क्रम में वे नवरात्र पर्व पर मंदिर जाते हैं, मंदिर प्रबंधक शर्माजी से झिझकते हुए चाय के बहाने मेल मुलाकात होती है और एक दिन वे मंदिर के कंप्यूटर में दानराशि इंद्राज करने का काम लेते हुए मंदिर जाने को अपनी दिनचर्या बना लेते हैं, उनकी छतरी वहीं रखने लगते हैं ताकि बारिश आने पर वह छतरी किसी के काम आ सके।

व्यक्ति अपने स्वनिर्मित घेरे बंदी से जब ऊबने लगता है तब वह स्वयं छुटकारा पाना चाहता है, क्योंकि वह समूह में रहने वाला सामाजिक प्राणी है, इसलिए अकेलेपन के संत्रास से वह मुक्त होना चाहता है। सुरेन्द्र नाथ जी पर केंद्रित यह कहानी अल्पभाषी और स्वकेन्द्रित इंसानों को एक ऐसा संदेश देती है, जो प्रत्येक के लिए महत्त्वपूर्ण है।

-अरुण सातले

000

इस कहानी में कथानक ही सिर्फ अंतर्मुखी स्वभाव से बाहर आने को लेकर है। किंतु कई सारी छोटी-छोटी घटनाएँ रेखांकित करने योग्य है। पहले तो एकाकीपन से ऊबने के पहले का घटनाक्रम और उनकी मानसिक स्थिति। फिर धीरे-धीरे अकेलेपन से बाहर आने के उपक्रम तथा अंत में उनकी खुशी। यकीनन एक बढ़िया मनोवैज्ञानिक कहानी है जिसकी जितनी तारीफ की जाए कम है।

-शैलेन्द्र शरण

000

किसी को अकेलापन काटने को दौड़ता है तो किसी को वही अकेलापन बड़ा रास आता है। कई लोग अकेलेपन को दूर करने दोस्तों के बीच जाते हैं और कुछ इसलिये दोस्त बनाने से परहेज़ रखते हैं ताकि उनकी निजता में खलल न पड़े। इन्हीं कारणों से सुरेन्द्रनाथ जी ने पत्नी के स्वर्ग सिधारने के बाद बेटों के हर तरह से मनाने के बावजूद उनके साथ जाने को तैयार नहीं हुए।

भले ही सुरेन्द्रनाथ जी जैसे शख्स को अकेलेपन की खोल में रहना पसंद हो लेकिन कभी न कभी उस खोल से बाहर आने का मन कर ही जाता है परंतु एक आदत से दूसरी आदत की ओर जाना सहज नहीं है। तभी तो वे चाहकर भी अपने बच्चों के पास न जा सके और ना ही सीनियर सिटीजन संस्था को अपना सके।

नवरात्र पर सुरेन्द्रनाथ जी को पत्नी का याद आना, फिर उनका मंदिर जाना, आँकड़ों से प्रेम की वजह से मंदिर के काम से जुड़कर मंदिर को ही घर जैसा बना लेना यह सब मन को छू गया।

-दर्शना जैन

000

संदर्भ पत्रिका "विभोम-स्वर" में प्रकाशित कथाकार सुमन कुमार घई जी की कहानी "छतरी" मनुष्य के मन के विज्ञान पर आधारित मनोवैज्ञानिक कहानी है। भीतर और बाहर की संधि रेखा पर खड़ी यह कहानी अंतर्मुखी से बहिर्मुखी हो जाने की यात्रा है। अंतर्मुखी व्यक्ति केवल अपने से ही संवाद करता है, बाहर वह मात्र औपचारिक ही रहता है। आवश्यक संक्षिप्त संवाद करने वाले सुरेंद्र नाथ जीवन के अंतिम पड़ाव पर इस एकाकीपन से विचलित हो जाते हैं। इस एकाकीपन की कारा से बाहर निकल वह उस सुख का अनुभव करना चाहते हैं जिससे अभी तक सर्वथा वंचित ही रहे हैं। बहुत सुविधाजनक किंतु एकाकी दिनचर्या से ऊबकर वह एक छतरी के माध्यम से जनजीवन से जुड़ते हैं। छतरी पर अपना पता लिखकर, उसे जानबूझ कर छोड़ा आना और फिर वापस लाने वाले व्यक्ति से संवाद स्थापित होना जैसी कई घटनाओं के माध्यम से वह बहिर्मुखी हो जाने का सुख अनुभव कर प्रसन्न होते हैं। कथा के अंत में मंदिर में प्रतिदिन जाकर, व्यवस्था में सहयोगी होकर, लोगों से मिलकर और छतरी को सभी के उपयोग के लिए देकर वे एकाकीपन के आवरण को उतार फेंकते हैं। यह सब छतरी का ही कमाल है। ऐसी छतरी हम सब के पास होना चाहिए।

सहज सरल भाषा और संक्षिप्त कथोपकथन के माध्यम से बुनी गई कहानी आकर्षक और पठनीय है। इस हेतु कथाकार घई जी का हार्दिक अभिनंदन।

-रघुवीर शर्मा

000

समीक्षाओं की ब्लॉग पत्रिका कथाचक्र में विभोम-स्वर के जुलाई-सितम्बर 2021 की समीक्षा

विभोम-स्वर ने हिन्दी साहित्य जगत् में कम समय में ख्याति अर्जित की है। यह पत्रिका सभी विधाएँ समेटे कथा प्रधान त्रैमासिकी है। पत्रिका का संपादकीय सुधा ओम ढींगरा ने लिखा है। संपादकीय में

Covid 19 के बाद की स्थिति पर विचार किया गया है। लॉकडाउन तथा उसके बाद गिरती हुई वैश्विक अर्थव्यवस्था का हाल किसी से छिपा नहीं है। सच तो यह है कि कोरोना महामारी ने इस सदी के मानव की जीवन शैली में अमूलचूल परिवर्तन किया है। सुधा जी ने लिखा है कि, कोरोना ने एक बात स्पष्ट कर दी है, विश्व के हर व्यक्ति को तरह तरह की चुनौतियों के लिये तैयार रहना पड़ेगा। सच है अन्यथा मानव सभ्यता ख़तरे में पड़ जाएगी।

विस्मृति के द्वार उपशीर्षक के अंतर्गत पत्रिका में प्रसिद्ध लेखिका उषा प्रियम्वदा का संस्मरण है। शीर्षक है, शिब्बनलाल की बहन, रोती नहीं। शीर्षक आपको अजीब सा लगेगा। इसमें ऐसा क्या है लेकिन संस्मरण इस शीर्षक के आस-पास घूमती हुई दिखाई पड़ती है। इसे कहानी की शैली में लिखा गया है। उन्होंने इस लंबे तथा प्रभावित करने वाले संस्मरण को मार्मिक शैली में लिखा है। रचना में अनेक स्थान पर उषा जी की उपस्थिति दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियों, उपन्यास का रसास्वादन कराता यह लेख सीखने के लिये बहुत कुछ छोड़ता है। अच्छा संस्मरण है।

पत्रिका में आठ पठनीय तथा प्रभावशाली कहानियाँ प्रकाशित की गई है। कहानी झूठा सेब को प्रज्ञा पाण्डेय ने लिखा है। कहानी आम जीवन की कथा है। मिसेज़ तनेजा के इर्दगिर्द कहानी रची गई है। कहानी अच्छी एवं पठनीय है। विवेक निझावन द्वारा लिखी गई कहानी उसकी मौत बहुत कुछ नया है। कहानी का मुख्य पात्र इसी चिंता में डूबा रहता है कि उसे मौत की सज़ा मिलेगी। लेकिन वह जीना चाहता है, कुछ नया करना चाहता है। कहानी पढ़ें अच्छी लगेगी। अँधेरों के बीच कहानी को अरुणा सब्बरवाल ने लिखा है। शहरी जीवन तथा उसकी आपाधापी के बीच से आगे बढ़ती यह कहानी अँधेरे को चीरती चलती है। उसके पश्चात् पता चलता है कि सिमरन का जीवन कैसा गुज़रेगा। अच्छी रचना है। कादम्बरी मेहरा की लिखी कहानी कौन सुने? में नया कुछ पढ़ने के लिये है। बड़े परिवार की बेटी सरोज के व्यक्तित्व को उभारती हुई यह कहानी नई संवाद शैली के कारण प्रभावित करती है। पढ़ने योग्य रचना है। मिशन एन.पी.ए. को डॉ. रमेश यादव ने लिखा है। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था से बाहर निकलते भविष्य का बदला स्वरूप इसमें है। अच्छी रचना है। सेहरे का सगुन को कामेश्वर ने लिखा है। यह रचना मुस्लिम समाज में संपन्न होने वाले वैवाहिक गतिविधियों से आम जन को परिचित कराती है। कहानी में प्रयोग के साथ नयापन है। सेवक नैयर की लिखी कहानी स्वाभिमान आजकल के गाँवों को अर्द्धशहरों में बदलते परिवेश का कथानक है। लेखक ने विस्तार से बदलते ग्रामीण जीवन को पाठकों के सामने रखा है। कहानी देवता को अरुण अर्णव खरे ने लिखा है। कहानी सामान्य भारतीय परिवार के युवक के भविष्य की चिंता दर्शाती है। छाया श्रीवास्तव की लिखी कहानी सन्नाटा में पिता के जाने के बाद माँ के प्रति बेटी के समर्पण दिखाई देता है। पत्रिका में कहानीकारों की पहली कहानी भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका विभोम-स्वर का यह प्रयास नए कहानीकारों के लिये संजीवनी का कार्य करेगा। इस अंक में अदिति सिंह भदौरिया की लिखी पहली कहानी आख़िरी ख़त प्रकाशित की गई है।

पत्रिका के इस अंक में मलयालम कहानी का अनुवाद प्रकाशित किया गया है। मलयालम कथाकार कमला दास की लिखी कहानी यर्थाथ के क्रूर चक्र का हिन्दी अनुवाद अनामिका अनु ने किया है। कहानी पढ़ने पर कहीं से भी नहीं लगता है कि यह अनुवाद है। कहानी में सरसता है पाठकों को यह सरसता अच्छी लगेगी।

श्रीकांत आप्टे अच्छे व्यंग्यकार हैं। उनकी रचनाओं में पैनापन तथा नवीनता होती है। लोकापर्ण व्यंग्य में भी वही पैनापन है। लोकापर्ण करने वालों की वेशभूषा, कार्यशैली तथा क्रियाकर्म पर अच्छा व्यंग्य किया गया है। रचना में हास्य की अपेक्षा व्यंग्य अधिक है। आप हास्य पसंद करते हो तो यह आपके लिये नहीं है। लेकिन व्यंग्य के समझदार पाठकों के लिये यह अच्छी व्यंग्य रचना है।

इस अंक में एक प्रभावशाली संस्मरण है जिसका शीर्षक है हम भी कमीने तुम भी कमीने। इस संस्मरण की लेखिका हैं जेबा अल्वी। पाकिस्तान की लेखिका का संस्मरण प्रभावित करता है। वहाँ की जीवन शैली तथा शहरी वातावरण पर उन्होंने विस्तार से लिखा है। एक अन्य संस्मरण वीरेन्द्र जैन द्वारा लिखा गया है। इसका शीर्षक है, रामरतन अवस्थी जी मेरे पहले साहित्यिक गुरुओं में से थे। लेखक ने अवस्थी जी के जीवन पर विश्लेषणात्मक ढंग से प्रकाश डाला है।

गोविंद सेन का लेख है, शीर्षक है रेडियो का इलाज करते पिता। रेडियो की यह कहानी पिछली सदी के प्रत्येक भारतीय परिवार की कहानी है। जिन्होंने अपने घर में रेडियो के दर्शन किये हैं। कैसे हम लोग रेडियो की साज सँभाल करते थे, लेखक गोविंद सेन रोचक ढंग से वर्णन करते हुये बताते हैं। एक अन्य लेख शोभा रस्तोगी ने लिखा है। जिसका शीर्षक है जन्माष्टमी। प्रभावित करने वाला अच्छा लेख है।

इस अंक में लिप्यांतरण के अंतर्गत लेख गालिब एण्ड गोएटे प्रकाशित किया गया है। यह मूल रचना हाजी लक़ लक़ द्वारा लिखी गई है। इसका लिप्यांतरण अख्तर अली ने किया है। पत्रिका के पाठकों को रचना अवश्य पसंद आएगी। पत्रिका के इस अंक में कविताएँ प्रकाशित की गई है। कथाप्रधान पत्रिका में इन्हें पढ़कर तसल्ली होती है कि कविता के चाहने वालों की कोई कमी नहीं है।

इस उपशीर्षक में पत्रिका के संपादक पंकज सुबीर के विचार हैं। संपादकीय में कोरोना काल में रचनाओं के प्रकाशन पर विचार व्यक्त किये गए हैं। आजकल रचनाओं के प्रकाशन से पहले सोशल मीडिया पर उसे पोस्ट करने की परंपरा सी चल पड़ी है। यह साहित्य के लिये अच्छा नहीं है। उसी तरह किसी एक रचना को प्रकाशन के लिये अनेक संस्थानों में भेजना भी ठीक नहीं है। अच्छा संपादकीय है, साहित्य प्रेमियों को कोरोनाकाल में धैर्य रखने की सलाह है।

-अखिलेश शुक्ल, इटारसी

000

'परेड, कानपुर'

उषा प्रियम्वदा

उषा प्रियम्वदा
1219 शोर वुड बुलेवार्ड,
मैडिसन , विस्कॉन्सिन, 53705, यू एस ए
मोबाइल-608-238-3681
ईमेल- unilsson@facstaff.wisc.edu

मेरा बचपन एक दम से ख़त्म हो गया- वह हरे प्रिंट वाली फ्रॉक, मोर पँखियों के आगे पीछे सुधीर के साथ लुकाछिपी का खेल, उस सफ़ेद मोर के नाचते हुए पँख, गर्मी की छुट्टी में भाई होरीलाल के साथ पार्क रोड की सड़क से टूटी फूटी, विध्वंस रेज़ीडेन्सी तक की सुबह की सैर, वह घने फूलते हुए अमलतास और गुलमोहर – सब समाप्त।

मुझे समझ नहीं थी कि क्या हो रहा है, क्यों, यह समझ थी; क्योंकि दादा ने एक दिन कहा- "गाँधी जी 'भारत छोड़ों' आन्दोलन शुरू कर रहे हैं, मैं उनसे मिलने जा रहा हूँ, क्या आदेश देते हैं।" और बस, दादा ग़ायब, बरसों-बरसों के लिए- सुनने में आता रहा, दादा को अंग्रेज़ों ने गिरफ़्तार कर लिया है, उन्हें फाँसी की सज़ा हुई है, बाद में सुना- आजन्म क़ैद-बस एक सन्नाटा-दादा शिब्बन लाल मेरे बाल जीवन से लुप्त हो गए।

मैं फटी-फटी आँखों से सबको देखती, किसी चेहरे पर हँसी नहीं, कोई नार्मल जीवन की गतिविधि नहीं। स्कूल बन्द हो गए, बड़ी बहन कमला इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के दूसरे छात्रों की तरह स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हो गई थीं- जुलूस, पुलिस के प्रति विरोध, छात्रों के संग कुछ समय जेल, फिर यूनिवर्सिटी बन्द हो गई और वह भी घर लौट आईं। हमारे मकान मालिक ने जो अंग्रेज़ भक्त राय साहब थे, हमें घर से निकाल दिया।

हम सुन्दर बाग़ के छोटे से मकान में आ गए, घर का किराया, रोज़मर्रा का ख़र्च, खाना-पीना, महरी यह सब कैसे चलता था। मुझे मालूम नहीं था, बस यह जानती थी कि डबल रोटी की जो पैंदी होती थी, उसी का टोस्ट मुझे नाश्ते में मिलता था। जब बड़ी बहन कमला को सुबह का अख़बार देने में देर हो जाती तो वह मेरे दोनों हाथ पकड़कर मेरा सिर दीवार से टकराने लगती। यह रोज़ होता था, मैं हत् बुद्धि रह जाती थी, मेरी आँखें डबडबा आती थीं पर आँसू टपकते नहीं थे, न जाने उन्हें किस पर क्रोध था, और उनका गुस्सा मुझ पर ही क्यों निकलता था, शायद

इसलिए कि मैं सबसे छोटी थी, असहाय, असमर्थ मरगिल्ली-सी। कामिनी मुझसे चार साल बड़ी थीं, हृष्टपुष्ट, भंयकर गुस्सेवाली और मैं वह पुत्र या भाई नहीं थी जिसका मेरे जन्म पर अपेक्षा थी। बहुत बाद में, बरसों बाद मैंने बड़ी बहन के नवासे को यह बात बताई और हर चीज़ को बहुत हल्के-फुल्के ढंग से लेते हुए कहा-"वह जो जिज्जी दीवार से मेरा सिर टकराती थीं, उसी वजह से मेरी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई।"

वह चुप रह गया, वह अत्यन्त प्रतिभाशाली युवक है और उस समय स्टैनफ़र्ड यूनिवर्सिटी से पीएॅच.डी कर रहा था। बचपन में दस महीने की आयु में वह चारपाई से सिर के बल गिर गया था। और उसके चीख़ मारकर रोने की आवाज़ से पूरा घर इकट्ठा हो गया था- उसकी माँ ने भी रोते-रोते उसका सिर सहलाते हुए मुझसे कहा, "आप पर छोड़कर नहाने गई थी, आपसे देखा भी नहीं गया।"

मैंने अपराधभाव से कहा, "देख तो रही थी, क्या मालूम था कि करवट लेकर उधर से नीचे गिर जाएगा।"

राहुल के प्रतिभाशाली होने का श्रेय भी मैं परिहास में अपनी निगरानी में सिर के बल लुढ़कने पर देती रही। पीएॅच.डी प्रोग्राम के लिए राहुल को अमेरिका की आठों सर्वश्रेष्ठ यूनिवर्सिटीज़ में एडमिशन मिल गया था। हार्वर्ड की बजाय उसने स्टेनफ़ोर्ड को चुना था-प्रशांत (मेरे पति) को निराशा हुई थी, पर वे चुप रहे थे।

तो मेरा बचपन? ख़बरें आती रहीं कि गाँधी जी गिरफ्तार हो गए हैं- देश के बड़े-बड़े नेता भी- अब क्या होगा? सब कुछ अंधकार में, देश के साथ हम सबका जीवन भी।

जब तक दादा पकड़े नहीं गए, हमारे घर रोज़ आगे-पीछे के दरवाज़े पर सिपाही तैनात रहता था- किसी भी समय सी.आई.डी. के साथ पुलिस तलाशी लेने आ जाती थीं।

हम सबके गाल पिचक गए थे, आँखें उदास और परेशान; भविष्य एक बड़ा प्रश्नचिह्न-

कुछ महीने पहले भाई होरीलाल का

विवाह हो गया था- भाभी छोटे क़द की, दुबली-पतली थीं- मैं उनसे चिपकी रहती थी, मुझे बहुत अच्छी लगती थीं।

यह ज़ाहिर था कि होरीलाल की आय में मेरी माँ और तीन बेटियों का निर्वाह मुश्किल था।

तब भैया ने माँ को सुझाया कि शिब्बनलाल के भाई होने के नाते वह कभी भी गिरफ्तार हो सकते हैं। तब भाभी मायके चली जाएँगी, अच्छा यही होगा कि माँ तीनों बेटियों को लेकर चली जाए, पर कहाँ?

बड़े मामा, हरगुलाम हज़ेला, तालग्राम गाँव छोड़कर कानपुर में आ बसे थे, उनके पास गुज़र होनी संभव नहीं थी। बड़ी मौसी हरिद्वार में थी, मौसा जी उदारमना थे, पर उनकी आय सीमित थी।

माँ रात-रात भर या तो रोती रहती थी या फिर खाट पर करवटें बदलती रहती थीं। मैं उनके साथ सोती थी, सब देख रही थी मगर कुछ भी समझ नहीं रही थी। कोई भी नहीं समझ रहा था कि आगे क्या होने वाला है, हम तो उस देशभर में चलती स्वतंत्रता अभियान की आँधी में टूटे पत्तों की तरह थे।

तभी हमारी एक बुआ कुछ दिनों को आईं, वह बचपन में ही विधवा हो गई थीं। और सारी ज़िल्लत, अपमान और वंचना के साथ जेठ के परिवार के साथ रहती थीं- जब तिरस्कार, अपमान और घर के सारे कामकाज़ से टूटने लगती थीं तब अपने एक भतीजे की दया से जो भारतीय रेलवे में गार्ड था, बिना टिकट किसी संबंधी के पास चली जाती थीं। वह कभी कहीं चार-पाँच दिन से अधिक नहीं रहती थीं, और उस अवधि में वह बड़ी, मँगौड़ी तोड़ती थीं, कढ़ी, कराल और पतौड़े बनाकर सबको खिलाती थीं- शिब्बनलाल अपनी इन मौसी का बहुत सम्मान करते थे, जो उनकी नानी की बहन की बेटी थीं- तो एक दिन यह बुआ अपना सारा जीवन, सारी गृहस्थी दो थैलों में समेटे आ गई- उन्होंने माहौल देखा, परखा और जीवन भर को वंचनाओं और तिरस्कार से उपजे अनुभव से कहा, "अरे भौजी इस होरीलाल को कौन गिरफ़्तार करेगा? सीधा-सादा है कान का कच्चा बातों में आ गया है-यह सब प्रपंच इस बहू का है। वह तुम्हें और तुम्हारी लड़कियों को झेलना नहीं चाहती।"

माँ की आँखें सजल थीं- वह चुप रही, बुआ ने इस बार बड़ी मँगौड़ी नहीं तोड़ी, बस धोतियों की किनाटियाँ जोड़कर माँ की मशीन से दो थैले सिए, उसमें अपनी दो धोतियाँ, छेदों भरी तौलिया, पान सुपारी की पोटलियाँ ट्राँसफर की और दो तीन दिन बाद चली गईं।

हमारे सिर पर तलवार टँगी रही, घर में तनाव भरा सन्नाटा, हमारे बाबा के छोटे भाई, जो बाबू कहलाते थे, परिवार में सबसे संपन्न रहे होंगे। वह विधुर थे और उन्होंने कानपुर में परेड मुहल्ले में एक विशाल चौ मंज़िला मकान ख़रीदा था। जिसका नाम गणपति निवास था। वह सन्तानहीन और विधुर ही मरे। उनके बाद उनके सबसे छोटे भाई राजबहादुर घर के कर्ताधर्ता बने और घर उनके पास आया। उस घर की ईंट ईंट मेरी स्मृति में बसी हुई है। सामने चार-पाँच दुकानें, जो किराए पर चढ़ी थी। नीचे के खंड में किराएदार रहते थे और महराजिन, महाराज और उनका कुत्ता, ऊपर के खंड में एक लंबे कमरे, उससे संलग्न दो कोठरियाँ, आगे बरामदा और छत। मुंशी चाचा जिनका नाम लाजपतराय था, अपनी पत्नी शांति और छ: बच्चों के साथ रहते थे। उसकी बग़ल का बड़ा कमरा, एक कोठरी और सामने की छत, राजबहादुर की पत्नी रामदेवी, जिन्हें हम छोटी दादी कहते थे, उनके पास थी।

घर का सबसे बड़ा भाग सँझली दादी के

पास था, एक बहुत बड़े आकार का हाल, जिसकी छत बहुत ऊँची थी और जिसकी धन्नियाँ मैं अपने खटोले पर लेटे-लेटे ताका करती थी।

अपने भविष्य की उठापटक से अनजान कोठी की बग़ल में एक और लंबा कमरा था, जिसके नीचे बड़ा सा तहख़ाना था वह कमरा बक्सों और तरह तरह के सामानों से भरा हुआ था। हाल के आगे बड़ा सा बरामदा था, फिर खुली हुई छत, जिसके पार एक छोटा सा हाथ धोने के लिए लगा नल, और एक चाय पानी के लिए छोटा सा चौका। वहीं से सीढ़ियाँ ऊपर जाती थीं, जहाँ खुली हुई छत थी, जिनकी मुँडेर धूप और वर्षा से काली हो गई थी- हाल के दोनों तरफ़ लंबे-लंबे दो कमरे थे, जिनमें बड़ा वाला अर्जुन और दूसरा विक्रमाजीत, जिनके घर का नाम किचलू था, उनके पास था। पर उस घर की जो सबसे दुख दायक बात थी, इतने लोगों के बीच केवल एक शौचालय, और नहाने के लिए केवल एक टीन के दरवाज़े वाला गुसलख़ाना। जिसकी ख़ासियत थी कि जब नीचे के खंड में नल खुल जाता था, तो गुसलख़ाने में नल में पानी आना बंद हो जाता था। ऐसा दिन में कई बार होता था तब नहाने वाला टीन का दरवाज़ा भड़भड़ाता था। यह सिग्नल होता था कि नल में पानी आना बंद हो गया है। तब या तो पास के चौके से, हाथ में कटधुल, या बेलन लिए महराजिन छज्जे पर निकलकर कहती थी- "अरे नल बंद करो, उषा नहाय रही है"- या फिर छोटी दादी अपने कमरे से निकलकर यही बात दोहराती थी और तब अचानक नल में पानी आने लगता और साबुन धोने और नहाने का काम प्रारंभ हो जाता।

वह क्या परिस्थितियाँ थी यह तो मुझे याद नहीं, केवल यह कि किचलू चाचा लखनऊ आए और बड़ी उदारता से बोले "परेशानी क्या है? परेड पर इतना बड़ा घर है- "भाभी, वहीं चलो- तुम्हारा भी हक़ बनता है।"तो माँ अपनी बेटियों सहित कानपुर आ गई। रामदेवी जो घर की कर्ताधर्ता थी, उन्होंने हमारी उपस्थिति सहज रूप से स्वीकार कर ली।

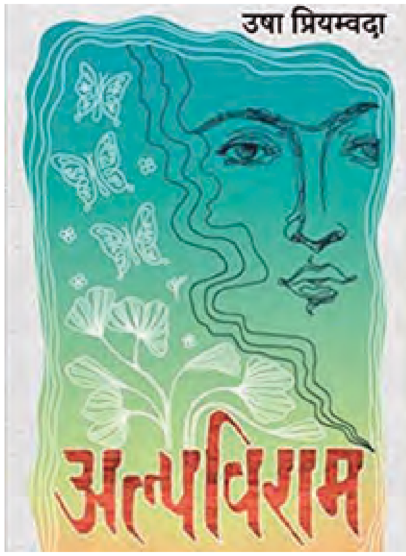

घर में सबको पिता का उदार स्वभाव और परिवार को संबल देने की याद थी, राजबहादुर बहुत समय तक पत्नी रामदेवी और सुशीला पुत्री के साथ मेरे पिता के साथ रहे थे। अस्वस्थ थे और नौकरी छोड़ चुके थे। उनके साथ उनके साले, उनकी पत्नी और बच्चा भी हमारे घर ही रहे- शिब्बन लाल भी सम्पूर्ण परिवार के साथ सौहार्द और बड़े होने की ज़िम्मेदारी निभाते रहे- इसी सद्भावना के कारण हमें परेड के उस मकान में शरण मिली। तो बात सही थी पिता के चाचा द्वारा ख़रीदे गए उस घर में हमारा भी हिस्सा था, जिसे कभी पिता या दादा ने न माँगा न लिया।

घर का ख़र्च दुकान के किरायों से चलता था, किचलू और नेहरू चाचा सातवें आठवें दर्जे के बाद पढ़ाई छोड़ बैठे थे, उनकी माँ निरक्षर थी और पढ़ने-लिखने में विश्वास नहीं करती थीं।

मेरे स्कूल में भर्ती होने पर बुड़बुड़ाया करती थी- उनको पति की पच्चीस रुपए पेंशन आती थी। उन्होंने किसी तरह अपना नाम "गुलाब देवी" लिखना सीख लिया था और वह अपनी पेंशन के रुपए मुंशी के बच्चों पर ख़र्च किया करती थीं- उनके तीनों बेटे अविवाहित थे। उन्हें उनके विवाह या नौकरी की बिल्कुल चिंता नहीं थी और सँझली दादी को मुंशी चाचा के बच्चों से बहुत प्यार था। घर की कोई मरम्मत नहीं कराता था, कभी छत टपकने लगती तो कभी छज्जा टूटकर नीचे गिर जाता तब सब सँभल-सँभलकर उधर से निकलते।

तो इस तरह खो गया मेरा बचपन। एक चाय के प्याले और दो पराठों के आहार पर, मैं अक्सर बीमार रहने लगी। जिस आयु में एक लड़की के अंगों का पालन-पोषण से विकास होता है, उसमें अनाहार से मैं सूखकर रह गई। और मेरा शरीर बन गया विविध बीमारियों का अड्डा।

******

बीए में अंग्रेज़ी पढ़ने पर मैंने पहली बार टॉलस्टाय, जेन आस्टिन आदि की पुस्तकें पढ़ी, मगर इससे पहले भी मुझे टॉलस्टाय की आन्ना करेनिना हिन्दी अनुवाद में मिल चुकी थी, पुरस्कार स्वरूप। छठे दर्जे में फ़र्स्ट आने पर कानपुर की 'कायस्थ सभा' ने मुझे पुरस्कृत किया था। पुरस्कार लेने तो जाना ही है, यह घर की सर्वेसर्वा छोटी दादी, रामदेवी ने घोषित कर दिया था। वहाँ बिरादरी के बड़े-बड़े लोग एकत्र होंगे। और वह चाहती थीं कि उस सभा में उनके घर की भी उपस्थिति दर्ज हो।

मगर साथ ही उन्होंने घोषणा की कि उषा बहुत लम्बी हो गई है, घर का सिला सलवार कुर्ता नहीं चलेगा। उसकी जगह साड़ी या धोती पहननी होगी। तब सिल्क की साड़ी और सूती की धोती कहा जाता था। सिल्क की साड़ी तो कल्पनातीत थी। यहाँ मेरे लिए नई सूती धोती मुहैय्या करना भी कठिन लग रहा था। समस्या हुई, क्योंकि घर की सभी स्त्रियाँ विधवाओं का पहनावा, साड़ी या किनारेदार सूती धोतियाँ पहनती थीं। चाची के पास स्वयं अच्छे कपड़ों के लाले पड़े रहते थे, क्योंकि मुंशी चाचा लगकर कोई नौकरी नहीं करते थे। छह बच्चों का खाना-पीना ही मुश्किल था।

बाज़ार से नई साड़ी या धोती आए तो कहाँ से? माँ के पास तो पैसे थे नहीं। ऊपर से राशन लगा था, कार्ड पर साल छह महीने में छह गज़ कपड़ा मिलता था, वह भी बेकार सा, मैं क्या पहनूँ, इस बात पर छोटी दादी और माँ में काफ़ी विचार विमर्श चलता रहा- मेरी बड़ी बहन का विवाह हो चुका था और वह अपने पीछे खादी की धोतियाँ छोड़ गई थीं।

विद्यार्थी जीवन में वह केवल खादी पहनती थी और विवाह के बाद केवल खादी

पहनना उनके परिवार को पसन्द नहीं था। बारह वर्ष की उम्र में अपने पहले पुरस्कार वितरण पर मैं पुरानी खादी की धोती पहनूँ यह माँ को ग्राह्य नहीं था।

माँ अपनी सबसे छोटी, पिता और परिवार से वंचित बिना किसी बालोचित इच्छा प्रकट करने वाली बेटी से बेहद प्यार करती थीं। माँ के हृदय में करुणा, वात्सल्य और उदारता का सागर हमेशा हिलोरे लेता रहता था। अपमान, तिरस्कार सारे दिन उपवास करने वाली सबसे छोटी बेटी के लिए उनकी आँखों में हमेशा आँसू रहते थे। स्कूल में खाने की छुट्टी में स्कूल की तरफ़ से शिवकली महराजिन एक छोटा सा दरवाज़ा खोलती थी। लड़कियाँ लाइन में खड़ी रहती थीं। एक ढकन्नी में दो पुरिया और उनके ऊपर एक चमचा भरकर आलू की तरकारी, जो उस भूख में अमृत लगती थी। कभी-कभार ढकन्नी होने पर मैं भी लाइन में खड़ी हो जाती थी, पर ऐसा कम होता था, स्कूल की फुलवारी में एक सूखा कुआँ था, जो लकड़ी के तख़्तों से पाट दिया गया था। उससे थोड़ा सा हटकर स्कूल की समृद्ध लड़कियों के लिए एक स्टाल था, जहाँ से आलू की टिकियाँ सिकने की सौंधी-सौंधी गंध हमेशा आसपास मँडराती रहती थी। एक दोने में दो कुरकुड़ी आलू की टिकियाँ, जिनपर चटनी और सोंठ इफ़रात से पड़ी होती थी। मालूम नहीं उसका दाम क्या होता था, वहाँ सादे पानी के साथ विमटो भी मिलता था जो उस समय आज के कोकाकोला की तरह ही प्रसिद्ध था।

मैं उसी अंधकुएँ की मुँडेर पर बैठकर, कुआँ पाट दिया गया था, ऊपर तख़्तों से ढका था, मगर हम सब सहेलियाँ मुँडेर पर ही बैठते थे।

तब घर में स्कूली बच्चों को डब्बा देने का चलन नहीं था। माँ को इतना अधिकार नहीं था कि मुझे दो रोटी या पराठे डिब्बे में दे दे। सुबह एक प्याला चाय पीकर, तैयार होकर स्कूल चली जाती थी- माँ चुप अपनी पूजा करती रहती थीं।

वह पास का सोना और बाबा का आगरे का घर बड़ी बेटी कमला के विवाह में बेच

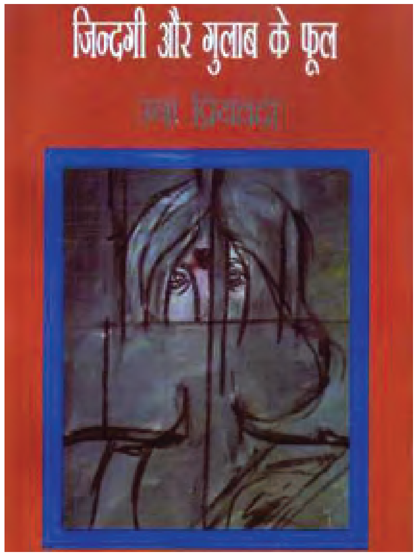

चुकी थीं। वह पहला विवाह था और अगर वकील साहब ज़िंदा होते तो ऐसी ही शान शौक़त से बिदा करते। बड़ी बहन ने लखनऊ जाकर रेखबदास से अपने असली मोती के गहने बनवाए थे। बनारसी टिशू और झिलमिलाते रेशम की साड़ियाँ ख़रीदी थीं- वह तो बड़ी बेटी होने के नाते उनका प्राप्य था- पर अब इस सबसे छोटी का क्या, जिसे खाने की छुट्टी में देने के लिए एक इकन्नी भी नहीं होती थी।

वह समय माँ के लिए बहुत त्रासद था, कष्टमय, पैतृक परिवार में पराश्रिता होकर रहना उन जैसी आत्माभिमानी स्त्री के लिए सहज नहीं था- मगर मैं तब समझ नहीं सकी थी। बस, उस आयु से ही दिन-दिन भर भूखे रहना और अपनी सभी बालोचित इच्छाओं को घोंट लेना मैंने सीख लिया था। यह सब मेरे लिए नहीं है, मगर साथ में अभिमान भी था, क्योंकि मेरे बड़े भाई स्वतंत्रता के लिए जूझ रहे थे- यदि वह भी अंग्रेज़ों के पिट्ठू बने रहते तो हमारे पास भी कुरकुरी आलू की टिकिया और विमटो पीने के साधन होते।

हम हर गंगा स्नान के अवसर पर, इन्दो बुआ की नीली मोटर में ढुँसकर सरसैया घाट जाते थे, वहाँ उनके नौकर एक गुमटी में दरी बिछाकर बैठने और खाने-पीने का प्रबंध पहले ही कर देते थे। इन्दो बुआ का विस्तृत परिवार भी वहाँ पहले से ही होता। सरसैया घाट की गुमटी में उस हर अवसर पर बिछने वाली नीले रंग की दरी पर बैठकर ठंडी पूरी और आलू खाते हुए मैं निस्पृह रहती थी। अलग -थलग, नदी की छोटी-छोटी लहरों और सैकड़ों विविध स्नानानियों को देखकर भी न देखती हुई मैं तब भी अपने बालपन के मन में एक अलगाव महसूस करती थी।

"बड़े मकान" की उन समवयस्क, हँसती खिलखिलाती, बालों में नए रिबन बाँधे, कलाइयों में वहीं के बाज़ार से ख़रीदी नई-नई रंग बिरंगी चूड़ियों को सराहती, हम उम्र लड़कियों को देखती हुई अपने को उन सबसे दूर पाती और टोकती रहती मन में, हरेक अनुभव, हरेक भावना, हरेक दृश्य, गंगा की एक-एक हिलोर; क्या तभी नींव पड़ रही थी एक लेखिका की- क्या वही एक तटस्थ, निस्पृह कहानीकार का उत्स था? वह लड़कियाँ अपने में मस्त, अपने में सम्पूर्ण थीं- वह फ़िल्में देखती थीं, फ़िल्मों के गानों पर नाचती गाती थीं, उनके माता-पिता उनपर न्योछावर रहते थे- उन्हें तिरस्कृत उषा पर एक दृष्टि डालने का भी समय नहीं था। मगर मेरे मन में उनके प्रति कोई रोष या गिला नहीं था। सुनती रहती थी उनके परिवार के विचार- शिब्बनलाल इतने मेधावी होकर गाँधी और स्वतंत्रता के चक्कर में पड़ गए। अच्छे ख़ासे प्रोफ़ेसर थे, अफ़सर बनते, मान सम्मान मिलता, ब्याह करते, सामान्य व्यक्तियों की तरह अच्छा ख़ासा संपन्न जीवन बिताते, मगर नहीं वह तो बन गए उस गाँधी के अनुयायी, ऊपर से ब्रह्मचर्य और दरिद्रता की सौगन्ध भी ले ली। हुँ ह?

यह हुँ ह मेरे हृदय में कटार सी चुभती, मगर मैं चुप रह जाती थी- असहाय और विपन्न थी।

यह सब कुछ मेरे लिए नहीं था, मेरा जीवन औरों की तरह नहीं था। उसमें टिफ़िन के लिए इकन्नी नहीं थी, रंग बिरंगी चूड़ियाँ, रिबन या गोटा लगी साड़ियाँ नहीं थीं।

मेरे मन में आक्रोश नहीं था, विद्रोह नहीं था-अपनी परिस्थितियों के प्रति स्वीकृति भी- जो आज भी है।

*****

तब यूरोप में दूसरा महायुद्ध चल रहा था और भारत में खाने-पीने, कपड़ों आदि पर

राशनिंग लगी हुई थी। बड़े चाचा अर्जुन राशनिंग इन्सपेक्टर थे। परिवार की परम्परा के अनुसार कर्मठ और ईमानदार, न जाने कैसे उन्हें मालूम पड़ गया, शायद उन्होंने नीचे वाले कमरे में होता विमर्श सुन लिया होगा कि उषा के पास कायस्थ सभा के पुरस्कार वितरण के अवसर पर पहनने के लिए उपयुक्त कपड़े नहीं हैं।

एक दिन वह अपने कमरे से नीचे उतरे, जहाँ बरामदे में घर की स्त्रियाँ बैठी रहती थीं- वह आए और बिना कुछ कहे मेरे हाथ में एक छपी हुई सूती धोती पकड़ा दी और वापस चले गए। सब स्त्रियाँ चुप और चकित।

वह लंबे थान में से कटी, पाँच या साढ़े पाँच गज़ की धोती थी, पूरी धोती पर छोटे-छोटे लाल गुलाब और उनकी हरी डंडियाँ छपी हुई थीं।

मैंने चुपचाप वह धोती ले ली, परिवार के सदस्यों को तब थैंक्यू कहने का चलन नहीं था, मैं अवाक् थी, कितना अयाचित, आह्लादकारी उपहार।

"इसमें किनारा नहीं है, तुम क्रोशिया से पतली सी बेल बुनकर लगा लो" माँ ने कहा।

मालूम नहीं किसने मुझे उस उम्र में क्रोशिया चलाना सिखा दिया था। मैंने हरे रंग की चारख़ानों वाली बेल बुनी, कोष्ठकों में लाल रंग की चेन उनके बीच डाल दी। माँ ने, जो सीने पिरोने में कुशल थीं। वह उस नई धोती पर टाँक दी और उस आयु में, सावधानी से उसे पहनकर मैं बड़े चाव से उस उत्सव में गई- मुझे टालस्टाय के एक उपन्यास का हिन्दी अनुवाद और "अकबर बीरबल के चुटकुले" इनाम में मिले, मैंने देखा वहाँ और भी पहचान की लड़कियाँ थीं जो पढ़ने में फिसड्डी थीं, मगर उनके परिवार कायस्थ सभा के कर्ताधर्ता थे। पुरस्कार पाने वालों की अगली पंक्ति में बैठे हुए मुझे अपनी नई, कड़कदार कलफ़ की साड़ी का पूरा-पूरा बोध था। वह मेरे जीवन की पहली नई साड़ी थी, जिज्जी या बुआ की उतरन नहीं। और मैं पुलकती क्यों नहीं, पुरस्कार विजेताओं की पहली पंक्ति में बैठी जो थी। दोनों पुस्तकें लेकर मैं अपनी जगह पर आकर बैठ गई-

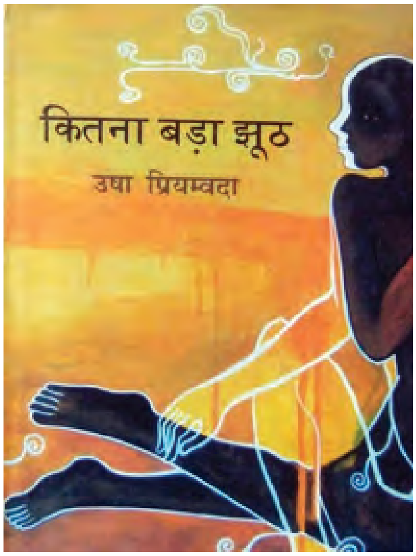

पुस्तकें माँ को पकड़ा दी।

मेरे पास दूसरी समवयसी लड़कियाँ भी बैठी थीं, समृद्ध परिवारों की होने के कारण उन्हें भी सम्माननीय स्थान मिला था। सरोज माइवाल ने जो मेरे क्लास में ही पढ़ती थी, उच्च स्वर में कहा "हमारे घर में आने वाली नौकरानियाँ, बर्तन वाली और झाड़ू वाली आज बिल्कुल ऐसी ही धोती पहनकर आई थीं।"

मुझे जैसे भरी सभा में उसने चाँटा मार दिया, उसके स्वर में जो ईर्ष्या और विद्रूप था। उसका सामना मैं पहली बार कर रही थी, उसकी बात में जो मेरी हेठी करने का मंतव्य था, उससे मैं हतबुद्धि रह गई, जैसे मेरी हैसियत एक नौकरानी की तरह थी- इस विद्रूप ने मुझे सहसा अपने पुरस्कार विजेता के स्थान से गिराकर नगण्य बना दिया।

इन्दो बुआ ने कहा, 'राशन का ज़माना है, एक ही थान में से सबको मिलती है- इसमें अजीब क्या है।"

इन्दो बुआ भव्य व्यक्तित्व वाली थी- पूरे शहर में उनका आदर था, मैं कृतज्ञ हुई और सरोज की बोलती बंद हो गई।

पर मैने देखा, मेरी माँ, जो अब तक गर्व से मुस्करा रही थीं, उनका चेहरा एकदम उतर गया और नेत्र सजल हो आए।

****

मैंने उस उम्र में समझ लिया था कि मेरा घर बार और जीवन मेरी उम्र की लड़कियों से भिन्न हैं। हमारे परेड के घर का रहन-सहन दूसरी सहपाठिनों के घर से अलग है।

उनके घरों में कुर्सी मेज़ और काउच वाली बैठक होती थी, खाने का कमरा, सोने के कमरे अलग-अलग होते थे। उनमें कई शौचालय और गुसलख़ाने होते थे, उनके घरों में फ्रिज नाम की चीज़ें और स्टेशन वैगन नाम की गाड़ियाँ होती थीं। उनके घरों में पारम्परिक पिता होते थे, भाई-बहन होते थे। सरोज माइवाल अपने घर के ताँगे पर स्कूल आती थी। मेरी तरह स्कूल के ठेलेपर नहीं- जो एक लकड़ी के बक्से की तरह होता, चारों तरफ पर्दे, अन्दर दो बेंचे, जिन पर हम बैठते थे। एक व्यक्ति ठेला खींचता था, दूसरा पीछे से धक्का देता था- स्कूल की एक प्रौढ़ परिचारिका, जिसे सब महराजिन कहते थे, अन्दर हमारे साथ बैठती थी और हम ठेले से उतरकर जब तक घर के दरवाज़े में प्रवेश न कर जाते वह हमारी निगरानी करती रहती थी।

हमारे पिता के समय के दो वफ़ादार नौकर हमारे जीवन में लौट आए थे। बचपन का मेरा अपना नौकर मैकू, जो मुझे कंधे पर बिठाकर सर्कस दिखाने ले जाता था और मुझसे बहुत स्नेह करता था, अब खोम्चा लगाता था और अक्सर मेरे लिए मलाई की बरफ़ या उबले सिंघाड़े ले आता था। दूसरी थी मेरे पिता के घर, खाना बनाने वाली, वफ़ादार महराजिन, जो चुपचाप माँ के साथ न जाने क्या बातें करती थी, माँ के पास कुछ पुराने चाँदी के रुपये रहे होंगे, उन्हीं को वह महराजिन द्वारा बिकवाती रहती थीं- या फिर साड़ियों पर लगाने के लिए फ़ारसी कढ़ाई के फ़ीते-

एक बार उन्होंने मुझे एक अठन्नी दी थी, स्कूल में विमटो पीने के लिए- वह मैंने बस्ते में रख ली थी। जब स्कूल में बस्ता खोला तो पाया कि वह अठन्नी चोरी हो गई है।

माँ ने जब पूछा "विमटो पिया?" तब मैं कुछ न बोल सकी " नहीं- अठन्नी किसी ने चुरा ली।"

माँ चुप रह गई।

छठे सातवें में पढ़ने वाली उस लड़की के पास खादी की भारी- भारी धोतियों के अतिरिक्त कुछ और नहीं होता था। दुबली पतली काया पर वह मोटी साड़ियाँ बोझ सी

थीं- और ज़्यादा थी भी नहीं- उन्हीं को लोट पौटकर पहनना होता था।

उत्सव या विवाहों पर पहनने लिए एक सिल्क की साड़ी थी, हल्के पीले रंग की, जो बहुत साल पहले उसके पिता उसकी माँ के लिए कलकत्ते से लाए थे। हल्की पीली सिल्क, जिसके किनारे पर सुनहरी ज़री की कढ़ाई थी। माँ ने अपने पुराने स्टाइल का जम्पर काटकर ब्लाउज़ बना दिया था, हर विवाह में वह वही साड़ी पहनने को दे देती थी। लड़की पहन लेती थी और जाकर उत्सव स्थल पर एक कोने में माँ और चाची के साथ सिकुड़ कर बैठ जाती थी। दूसरे परिवार की समवयस्क लड़कियाँ- बेबी, डौली, आशा, उत्तम, छोटी मुनिया हर अवसर पर नए कपड़े पहनकर प्रकट होती थी। उन साड़ियों की अब उस लड़की को याद नहीं है। मगर आशा की रेशमी गोटा लगी साड़ी एक दम उसे भा गई थी। और बहुत दिनों तक उस साड़ी की ललक उसके दिल में बनी रही। फिर वैसे ही विलुप्त हो गई जैसे उस उम्र की अन्य इच्छाएँ हो जाती थीं - नगर के प्रसिद्ध पूँजीपति सिंहानिया परिवार की बेटी, जो सहपाठिनी थी, पुष्पा के विवाह में जाने की इच्छा, अंतरंग सहेली चुनमुन की बर्थडे पार्टी में जाने की ललक- सब मन में समेट ली जाती थीं। माँ से उल्लेख भी नहीं होता था, क्योंकि पहनने के लिए कपड़े नहीं होते थे। न ताँगे में जाने के लिए किराए का एक रुपया भी-प्रैज़ेंट की बात तो दूर-

*****

मेरी मित्र निर्मला जैन का भव्य प्रासाद, निर्मला, उनकी पुत्रवधू नूतन, मन्नू, राजी सेठ हम सब कश्मीरी शालवाले की गठरी की शालें देख रहे थे। मुझे नेवीब्लू शॉल पसन्द आई। बाइस हज़ार रुपए की...

"बाइस हज़ार ?" मैंने कहा।

"तुम्हारे लिए बाइस हज़ार रुपये क्या है? तुम्हारे पास तो डालर हैं।"

उस नरम, मुलायम शॉल का पशमीना छूते हुए मुझे मेरा बचपन याद आ गया। राजी की बात पर मैं चुप रह गई। उन डालरों का मैंने क्या मूल्य भरा, यह राजी को क्या पता- वह पति, पुत्र, नौकर-चाकर, गाड़ी ड्राइवर की सुविधा से संपन्न थीं- मेरे बचपन की सहेलियों की तरह। मैंने वह शॉल नहीं ख़रीदी।

*****

तो वह घिसी हुई, बेहद पुरानी साड़ी मैंने बरसों पहनी, हर उत्सव, हर विवाह पर वह साड़ी जर्जर होकर कहाँ गई मुझे मालूम नहीं। पर ब्लाउज़ की कटी हुई बाँहें जो जम्पर की थी- अभी भी सैंतकर रखी हुई हैं, बसन्त कुंज में मेरे पास माँ का बहुत पुराना ट्रंक है, जिसमें सहेजकर रखा हुआ है। माँ का प्रिय चायका प्याला, सुशीला बुआ की यादगार एक छपी हुई साड़ी, कोपेन हेगन से भेजा जीजा जी का एक पोस्टकार्ड और पाँच साल की उमर में टायफ़ायड से मर जाने वाले भाई की मखमल और ज़री की वास्कट जिसे माँ जीवन भर सँजोए रही- हर बार अकेले में बॉक्स खोलती हूँ- जम्पर से कटी हुई बाँहों को प्यार से लौटती-पौटती हूँ- और स्मृति में उमड़ आते हैं वह कष्ट और संत्रास और तिरस्कृत दिन, जो मेरे जीवन की पैचवर्क गुदड़ी के बहुत महत्त्वपूर्ण दिन थे और जिन्होंने मेरे भावी जीवन की नींव रखी और भविष्य को गढ़ा। मुझे याद आता है बारह तेरह साल की उम्र का वह संधिकाल- जिसने अनाहार और रोग से उत्पन्न तड़प और प्रवंचना पूर्ण व्यक्तियों के प्रति संवेदना की नींव रखी। गजाधर बाबू का त्रासद जीवन, सुषमा का अंतर्द्वंद्व और परिवार के प्रति ज़िम्मेदारी का उत्स शायद मेरी उसी अनुभूति से उत्पन्न हुआ, मेरी प्रारंभिक कहानियाँ जो सरिता में प्रकाशित होती रही। मेरे कानपुर में जिए समय की उत्पत्ति है- वह काट, वह तड़प, वह मौन मेरे प्रतिदिन के जीवन में सन्निहित थी।

*****

कई दशकों बाद मैं अमेरिका के पूर्व में "केपकौड" नामक सागर तट पर अपने बहुत प्रिय मित्र की समर कॉटेज में अपने पति प्रशान्त के साथ बैठी हुई हूँ। एडवर्ड डिमक विश्व प्रसिद्ध बंगाली के प्रकांड पंडित शिकागो यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं- भारत और भारतीय सभ्यता के प्रेमी और वरिष्ठ होने पर भी वह और उनका पूरा परिवार मुझसे बहुत प्यार करता है। प्रशान्त मुझे बॉस्टन से ड्राइव करके ले गए हैं। गर्मी है और एडवर्ड डिमक अपेक्षा करेंगे, इसलिए मैं सूती ताँत की बंगाली साड़ी पहने हूँ, गर्मी के मौसम के उपयुक्त।

"बहुत अच्छी साड़ी है"- एडवर्ड डिमक के एक अमेरिकन सहयोगी की पत्नी ने कहा- "तुम्हारे पास कितनी साड़ियाँ होगी उषा? हर बार नई साड़ी में दिखाई देती हो, मुझे पता है भारतीय स्त्रियाँ साड़ियों पर जान देती हैं।"

"अरे, बस थोड़ी सी ही-" मैं नम्रता पूर्वक कहती हूँ।

"थोड़ी सी का मतलब है, कम से कम डेढ़ सौ। उषा अपनी विद्वता के साथ अपने अपूर्व साड़ी कलेक्शन के लिए भी प्रसिद्ध है-" एडवर्ड डिमक ने हँसते हुए कहा।

मैं लज्जालु भाव से मुस्करा रही हूँ- एडवर्ड डिमक का मुझे विद्वान कहना अच्छा लगा है।

प्रशान्त योगदान देते हुए मुस्कराते हैं- चैन्नई की 'नल्ली' दुकान में साठ हज़ार साड़ियाँ थीं, पर उषा ने सिर्फ़ पचहत्तर साड़ियाँ ख़रीदीं-" सब अपनी जिन और टानिक पीते हुए हँस रहे हैं, श्रीमती डिमक भीं।

मैं भी हँसी- कुछ लज्जा से, क्योंकि जब श्री वेंकटेश्वर मंदिर से लौटकर, साड़ी की दुकान पर मेरी बड़ी बहन कामिनी, भानजी अलका और मैं साड़ियाँ ख़रीदने में व्यस्थ थे, प्रशान्त ख़ाली बैठे- बैठे दुकान की आलमारियाँ और उनमें रखी साड़ियों की गट्ठियाँ गिन लेंगे- यह मैंने सोचा भी न था।

"यह नहीं-" प्रशान्त हँसते-हँसते कहते गए-

"हम जहाँ भी गए, कश्मीर से केरल तक- उषा ने हर जगह साड़ियाँ ख़रीदी- और आज, यहाँ आने से पहले-

"क्या पहनूँ- कुछ है ही नहीं।"

मैं मुस्कराती रही- कितना प्रेम, कितना सौहार्द, कितनी मैत्री, का वातावरण था- कितना भिन्न....।

उस कायस्थ सभा के पुरस्कार वितरण के अवसर से-मगर वह फाँस....।

000

क्रमश: (अगले अंक में जारी)

मैं लौट रही हूँ

उर्मिला शिरीष

उर्मिला शिरीष
ई-115/12, शिवाजी नगर, भोपाल-462016, मप्र
मोबाइल- 9827062211
ईमेल- urmilashirish@hotmail.com

घर लौटने की बारी अब मेरी थी।

तीस वर्षों से घर से बाहर थी। नौकरी के चलते शहर-शहर ट्रांसफर के चलते वह कभी अपने बारे में सोच ही नहीं पाई। बस एक जुनून-सा सवार था... श्रेष्ठ... श्रेष्ठ... श्रेष्ठतम। काम भी, व्यवहार भी और कैरियर भी। इन सबके बीच सुबह-शाम, दोपहर-रात्रि को कभी महसूस ही नहीं किया। बस एक बोर्ड को देखा था दीवार पर, जिस पर दूसरे दिन के प्रोग्राम लिखे होते। समय और स्थान का विवरण दिया होता, वहीं से दिमाग़ में चीज़ें और छवियाँ बनना शुरू हो जाती थीं। इन सबके बीच घर के काम, बच्चों के काम, उनसे बात करना... के अलावा जैसे बहुत कुछ पीछे छूट जाता था।

आज समय आकर ठहर गया है। हर शाम डरावनी हो जाती। हर रात सन्नाटे में डूबी। खाना पकाते हुए लगता काश कोई एक और होना चाहिए! दो लोगों का खाना बनाते-बनाते कोई तीसरा आकर आ बैठता है रसोई में। खाने की टेबल पर।

"घर में कोई होना चाहिए।"

"किसलिए!"

"खाना बचता है।"

"सिर्फ़ तुम्हारे बचे हुए खाने के लिए।"

"नहीं, खाना खाते हुए हम सब एक साथ होते हैं। आत्मीय होते हैं। स्वाद और बातों का आदान-प्रदान होता है।"

"तो उठाकर किसी को दे दिया करो।"

"वह तो मैं करती ही हूँ...पर उससे हमारे घर का खालीपन दूर तो नहीं होता है।"

वह सारा खाना एक टिफिन में भरकर रख देती है...। कई बार यह भी होता है, कि उस

टिफिन में खाने की किसी को ज़रूरत भी नहीं होती है... बाद में वह गाय या कुत्तों के पास चला जाता...।

घर का कोना-कोना किसी को पाना चाहता है हर कमरे के पलंग पर, टेबल-कुर्सी पर... बरामदे में पड़े काऊच पर... बाहर पड़ी कुर्सियों पर... कोई होना चाहिए... यह अनुभूति पिछले कई दिनों से उसको गहरे से हो रही है। छाती के बीचों-बीच गुब्बारा जैसा कुछ फूलता रहता है... इतनी तेज़ घबराहट कि उसे लगता छाती... पीठ से होता वह घबराहट भरा दर्द... पाँवों तक पहुँच कर सुन्न-सा कर देता है, क्या यह मृत्यु का भय है? चारों तरफ फैले-पसरे प्राकृतिक आपदाओं के भयावह दृश्यों ने उसे भयभीत कर दिया है। इन दिनों तनाव से दूर रहने के तमाम उपाय फेसबुक पर डले रहते हैं... पर तनाव उनके समझाने से दूर नहीं होता...! वह कॉमेडी सीरियल लगा लेती है और जानबूझकर ज़ोर-ज़ोर से ठहाके लगाती है ताकि अन्दर भरा बोझ का गुब्बारा अपनी हवा निकाल सके... वह पुराने नाते-रिश्तों को जीवित कर रही है... फ़ोन करके, उनके समाचार जानकर...। वह रसोई में तरह-तरह की चीज़ें बनाकर अपना मन बहलाना चाहती है... पर मन है कि... बस घबराता ही रहता है!

"अब नहीं रह सकते... तुम मेरा टिकिट बनवा दो।"

"कहाँ का?"

"कहीं का भी।"

"ऐसे माहौल में आप कहाँ जाएँगी?"

"कहीं भी... किसी भी जगह! जंगल में, मंदिरों में, मठों में, क़िलों में... कहीं भी!"

"आपको अच्छा संगीत सुनना चाहिए। बुक्स पढ़ना चाहिए। गाना गाइये... कोई इंस्ट्रूमेंट बजाइए... डांस करिये।"

"सुझाव तो अच्छा है... पर इस घबराहट का क्या करूँ जो दिल-दिमाग़ में दीमक की तरह लगी हुई है।"

"उसे बाहर निकालिये।"

"शाम को ऐसा लगता है जैसे अँधेरा बाहर नहीं मेरे भीतर उतर आता हो। सन्नाटे की सघनता मेरे मन पर छाती जाती है और मैं

उसमें डूबती जाती हूँ... यह सब पहले कभी नहीं लगता था।"

"पहले कभी ऐसा माहौल नहीं रहा था।"

"सुबह घूमती है।"

"हाँ।"

"सब कुछ करती हूँ... सब कुछ... अब यह एहसास तीव्र होने लगा है कि जब तक हम अपनों के बीच, अपनों के साथ नहीं होते तब तक सारी चीज़ें व्यर्थ हैं...। उनसे गले मिलना... उनके हाथ थामना... उनके गाल और माथा चूमना... ओह... यही हमें ज़िंदा रखता है, ऊर्जा भरता है हमारे भीतर... कोई है... कोई है... बस यही एहसास ज़िंदगी का सबब बन जाता है...।"

यह उसके भी मन की उलझन और अवसाद है कि सभी लोग ऐसा ही महसूस कर रहे हैं!

माँ, दादी, नानी और बुआएँ, चाचा-चाची... इनके पास आने-जाने और रहने का जो सुख था वह कब का हृदय को खाली कर चुका है।

छत पर जाकर बैठ गई वह। आसमान एकदम साफ चमक रहा था। बादल ऊपर थमे हुए से लग रहे थे। हवाई जहाज़ की आवाज़ और उसका गुज़रना... कितना रोमांचक लगता था बचपन में, कोने में ढेर सारे बादाम गिरे हुए थे... बीनकर भी क्या करेगी! पहले इन्हीं बादामों के लिए बच्चों में झगड़े हो जाते थे... कैरियों के लिए बच्चे छत की दीवारों से लटक कर, हाथ बढ़ा-बढ़ाकर कितना संघर्ष करते थे... कच्ची, हरी और पकी पीली कैरी के लिए! पत्थर मार-मारकर घायल कैरियों को उठाकर जिस तरह वे भागते थे, उसका अपना ही आनन्द होता था। पिछले कई दिनों से जो कैरियाँ जहाँ लगी थीं वहीं लटक रही थीं, उनको तोड़ने वाला कोई नहीं आया था। क्या बच्चे उनसे डरते थे या उन्हें अब कैरियों का स्वाद अच्छा नहीं लगता है।

किताबों को उलटते-पलटते एक डायरी हाथ आ गई। पुरानी... तीस साल पुरानी डायरी। कुछ स्कैच। कुछ कविताएँ। युवा थी... तब... जीवन में ऐसे ही दिल धड़का था... उसके लिए। उसकी मुस्कराहट, उसकी बातें, उसकी आवाज़... सब कुछ कितना मधुर, मोहक और सुन्दर था। यशवन्त! यशवन्त शर्मा। दोनों एक ही कॉलोनी में रहते थे। एक साथ लाइब्रेरी जाते थे। पढ़ने-लिखने के दोनों शौकीन। घंटों उनकी बातें-बहसें होती थीं। यशवन्त का फॉरेस्ट डिपार्टमेंट में सिलेक्शन हो गया था और वह अपने भाई के पास चली गई थी। बाद का जीवन दोनों ने अपने-अपने परिवारों के साथ बिताया था। कभी-कभी शादी-ब्याह में मुलाकात हो जाती तो एक दूसरे को देखकर खुश हो लेते थे। बस इतना ही मिलना-जुलना रहा होगा। खबरें मिलती रहीं कि यशवन्त की बेटियों की शादी हो गई या बेटा विदेश चला गया। यशवन्त को आगे बढ़ने की उत्कट महत्त्वाकांक्षा थी और वह आगे बढ़ता भी गया था। उसकी तारीफ सुनती थी कि उसने अपनी बहनों की शादी कर दी है, कि उसने भाई के लिए मकान बनवा दिया है, कि वह अपनी माँ को लेकर अक्सर घूमने जाता है। सुकून मिलता था सुनकर। मन प्रफुल्लित हो जाता था।

इतने लोगों के बीच जीवन भर उठना-बैठना रहा, मगर मन आज भी उसको अनायास ही याद कर बैठता है। उसकी आँखों की मादक चमक कभी हृदय से गई ही नहीं। कमल-पुष्पों भरा सरोवर हृदय में कहीं एक कोने में बना रहा...। यशवन्त... कहाँ हो सकता है? कहाँ? शाम की सघन तन्हाई में जब वह खिड़की के पार अंधकार में

टिमटिमाते नक्षत्रों को देख रही थी... तभी उसने फ़ोन किया यशवन्त को।

"यशवन्त! मैं बोल रही हूँ... अनुजा!"

"अनुजा! आज अचानक कैसे याद आ गई।"

"बस सोचा हालचाल पूछ लूँ।"

"तुम बताओ, कैसी हो?"

"ठीक हूँ।"

"घर में सब कैसे हैं?"

"सब कौन... मैं अकेला ही हूँ अनुजा!"

"क्यों... बच्चे! पत्नी!"

"बच्चे बाहर हैं। पत्नी उनके पास है। साल में दो बार आती है।"

"तुम नहीं गए।"

"मैं... मैं अपने घर को छोड़कर नहीं जा सकता। मैं कैसे जा सकता हूँ माँ को छोड़कर। सारे लोग यहीं पर हैं। मैं माँ को उस हाल में नहीं छोड़ सकता जिस हाल में आजकल बड़े बुज़ुर्ग रह रहे हैं, बड़ा मकान और अकेली माँ या पिता... मैं ऐसी स्थिति में माँ को नहीं छोड़ सकता।"

वह सुन रही थी।

"बच्चे तो नहीं हैं। उनका अपना परिवार है वहाँ। नौकरी है। पत्नी और बच्चे हैं।"

"तुमको बच्चों की याद नहीं आती।"

"सच कहूँ।"

"कहो ना।"

"नहीं...। याद नहीं आती क्योंकि रोज़ ही बात हो जाती है। हाँ... चिंता रहती है।"

"तुम बताओ।"

"मैं भी नहीं जा पाती हूँ। एक तो हैल्थ साथ नहीं देती है, दूसरा मैं यहाँ कुछ करना चाहती हूँ। अकेले रहकर थक गई हूँ। जीवन को कुछ नए ढंग से देखना, समझना और जीना चाहती हूँ।"

"अनुजा! हमारी सोच आज भी कितनी मिलती है।"

"मैं लौट रही हूँ यशवन्त... अपने घर लौट रही हूँ।"

"यहाँ क्या तुम्हारा घर नहीं है?"

"असली घर तो मन होता है... मैं अपने मन को अब और नहीं भरमाना चाहती हूँ... यशवन्त, क्या तुम भी वैसा ही फील करते हो

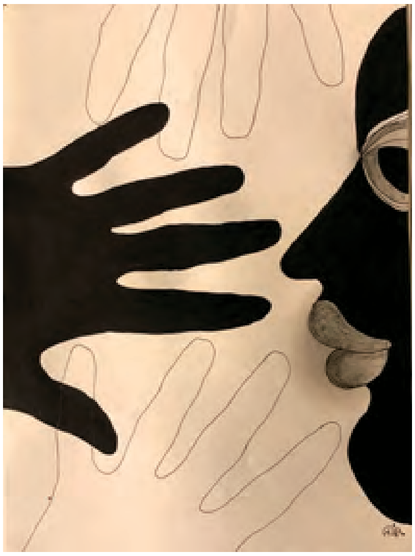

जैसा मैं! कहो। आज तो सच कह दो।"

"अनुजा, जीवन को बहने दिया है...बस कहीं कोई रोड़ा नहीं आया...।"

"आज हमें अपनों की बड़ी ज़रूरत है। बाहर का अकेलापन धीरे-धीरे भीतर बसता जाता है और हम जब तक उसे पहचानते हैं तब तक देर हो चुकी होती है।"

"अनुजा, मुझे कैंसर हो गया था... पर मैंने जीवन से हार नहीं मानी, अपने आपको ठीक करके ही माना।"

"यशवन्त, अर्थपूर्ण जीवन ही उमंग और उल्लास पैदा करता है वरना तो हम घिसटते रहते हैं धीरे-धीरे मृत्यु की तरफ। मृत्यु की प्रतीक्षा करने के लिए अभिशप्त होते जाते हैं। मुझे आज कुछ और नहीं चाहिए बस... इतना-सा एहसास कि मेरी किसी को ज़रूरत है... मैं किसी को प्रेम करती हूँ, कोई मुझे प्रेम करता है... भीतर का एहसास ही भीतर को यानी मन को, आत्मा को जिजीविषा से भर देता है...।"

दूसरे दिन से अनुजा ने महसूस किया... धूप में चाँदी की चमक थी। आसमान में खूबसूरत बादल छाये थे। हवाएँ कुछ-कुछ गुनगुना रही थी। परिन्दे प्रेम कर रहे थे। अनुजा ने दीया जलाया। हाथ जोड़े। सिर झुकाया। अब मैं जीना चाहती हूँ। सोचते हुए अनुजा ने दरवाज़ा खोला और पैदल ही उस पार्क की ओर बढ़ने लगी... जहाँ हर रोज़ यशवन्त घूमने आते हैं।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

तुम उसे तलाशने मत आना...

सैली बलजीत

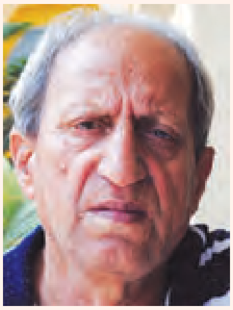

सैली बलजीत
1288, लेन-4, राम शरणम् कॉलोनी,
डलहौज़ी रोड, पठानकोट- 145001
मोबाइल- 6280683663
ईमेल- sailibaljit@gmail.com

वह एकाएक मसखरों-सी हरकतें क्यों करने लगा था? इस आख़िरी पड़ाव पर आकर सच ही आदमी मसखरा हो जाता है? वह कभी-कभार लोगों के लिए मज़ाक का पात्र क्यों बनने लगा था? दिन भर क्या-क्या नहीं करता था वह...उसकी दिनचर्या भी अजीब थी...सुबह उठते ही बस अड्डे के बाहर वाले चाय के खोखे का रुख़ लेता...वहाँ चाय पीना तो एक बहाना होता था...दरअसल अपने जैसे खटियल लोगों से बतियाने और समय काटने का बढ़िया अड्डा था उसके लिए, जमाल मियाँ का चाय का खोखा। उसका खाता चलता था वहाँ ...महीने के आख़िर में उसने हिसाब-किताब करते वक़्त कभी तकरार नहीं किया था। चुपचाप बटुए से रुपये निकाल जमाल मियाँ की हथेली पर धर देता था। यह उसका सबसे बढ़िया गुण था, वरना उसे पूरा दिन भर लोगों से तकरार करते हुए देखा जा सकता था।

उसकी मित्र मंडली का दायरा भी कम विशाल नहीं था...जहाँ तिवारी साहब जैसे पुलिस के बड़े रिटायर्ड अधिकारी उसके मित्रों में शामिल थे, वहीं रेल विभाग के अनेक चौथा दर्जा कर्मचारी भी उसके परिचितों में से थे। वह भी तो रेल विभाग का सेवानिवृत कर्मचारी था। उम्र के आख़िरी पड़ाव तक आते-आते उसकी स्मृतियों में अब भी रेलवे का सरकारी क्वार्टर सरसराता है...जहाँ वह अपनी बीवी और बच्चों के साथ जाने कितने साल रहा था...अब वो ज़माना फिर कहाँ लौटेगा...वह सोचते हुए उदास हो जाता रहा है...बच्चों को जितना पढ़ना था पढ़ाया...नौकरी के लायक बनाया...ज़िम्मेदारियों की गठरी उठाए चलता रहा...और...वह अकेला हो गया। उसकी बीवी को गुज़रे हुए बीस साल हो गए हैं। बड़ा बेटा बनारस में होता है...छोटा जबलपुर में...बेटियाँ अपने-अपने ससुराल में खुश हैं...और...उसे सभी मना चुके हैं

कि कहीं भी रह ले...बनारस या जबलपुर...लेकिन...उसे तो झाँसी के गली-कूचों में घुमक्कड़ी करना है...अपनी ज़मीन से कट कर जीना उसके लिए दुश्कर है। उसे यहीं रहना है...यहीं मरना है...चित्रा चौराहे पर लगने वाले रोज़ाना भण्डारे में खाने का लुत्फ लेना है।

उस दिन उसके किसी पुराने दोस्त ने उससे पूछ लिया था, 'क्यों बे...यहाँ क्या रखा है तेरा...? बेटों के पास रहेगा तो रोटी की चिन्ता तो हटेगी...'

'क्यों बे...तुमें क्या तकलीफ़ है...? बोल...? हाथ मैं जलाता हूँ...भूखा तो नहीं ना मरता...?' वह तुनक उठा था।

उसके दोस्त ने मशिवरा दिया था, 'तेरी बेहतरी के लिए कहता हूँ...चार दिन ज़िंदगी के सुख से रह...'

'यहीं ठीक हूँ...इस शहर में मेरी रूह है...आख़िरी वक़्त पर भी यहीं रहूँगा...' वह अड़ियल घोड़े की तरह टस-से-मस नहीं होना चाहता था, एक ही रट लगाए रहा था, 'रहने से क्या फ़र्क पड़ता है...सभी जगहें-सभी शहर एक जैसे होते हैं...खाने तो दो 'टुक' ही होते हैं ना आदमी ने...इज्ज़त की रोटी तो खाता हूँ...'

'इसे इज़्ज़त की रोटी कहता है...? रोज़-रोज़ सखी हनुमान मंदिर वालों ने तुझे 'लंगर' खिलाने का ठेका तो नहीं ले रखा...?'

'जहाँ इतने लोग खाते हैं...मेरे खाने से क्या फ़र्क पड़ता है...फिर मैं सेवा भी तो करता हूँ...पूरा दिन...पूछ लेना मंदिर वालों से...'

पता है...लोग क्या-क्या बातें करते हैं...?'

'करने दो...जहूर मियाँ किसी की परवाह नहीं करता...भाड़ में जाएँ वे...।'

रोज़- रोज़ रोटी खाने चले जाते हो...अच्छा लगता है?...तुम्हारी अच्छी-खासी पेन्शन है...फिर क्यों भिखमंगे बने हुए हो...?'

'मैं क्या करूँ फिर...?' वह अपनी चाँदी हुई दाढ़ी को खुजाने लगा था।

'अपने घर में क्यों नहीं खाते रोटी...क्या कमी है...?'

'लंगर में खाता हूँ तो तुम्हें क्यों बुरा लगता है...?'

'लगता है...तभी तो कह रहा हूँ..।'

वह शख़्स अपना माथा फोड़ता रहा था। उस पर कोई असर नहीं हुआ था। वह पथरीली शिला-सा खड़ा रहा था।

उसकी मसखरी वाली ख़बरें पूरे शहर में प्रचलित हैं...कहाँ-कहाँ नहीं दिख जाता वह। रामनवमी की शोभायात्रा में भगवे रंग का झण्डा लिए वह सबसे आगे चलता है...क़ब्रगाह में सवेरे-से-शाम तक क़ब्रों पर झाड़ू लगाते हुए उसे कितने लोगों ने देखा है...रमजान के दिनों वह रोज़े रखता है... नवरात्रों के दिनों में उसे मंदिरों में माथा रगड़ते हुए देखा जा सकता है...क्रिसमस के दिन उसे सीपरी बाज़ार के पीछे गिरजाघर का आँगन बुहारते हुए देख सकते हैं...गुरुद्वारों में उसे जूठे बरतन माँजते हुए देख सकते हैं...वह आदमी कितने रूपों में ढल गया प्रतीत नहीं होता? वह जहूर मियाँ है...उसे अपने धर्म की ही चिंता नहीं...वह जाने कहाँ-कहाँ, क्या-क्या नहीं करता...क़ब्रगाहों में मरे हुए आदमियों को पुकारता है...उन्हें कोसता है...अपने करीबी मित्रों की क़ब्रों को गालियाँ निकालता है...अपने खुदा से प्रश्न पूछता है...उलाहने करता है...लेकिन... क़ब्रगाह की ख़ामोशी उसे तोड़ जाती है...उसे तो यही तमन्ना रहती है कि क़ब्रगाह में सोये हुए उसके मित्र उठकर उससे बातें करें...उससे ठिठोली करें...उससे मसखरी करें...वह उनसे जहन्नुम की जानकारियाँ बटोरे... लेकिन... क़ब्रगाह में सोये हुए मुर्दे नहीं उठते तो वह खीझ उठता है...बेचैन हो उठता है...तिलमिला उठता है...उसकी भीतरी रूह काँप उठती है...

वह कल तिवारी साहब के घर चला आया था।

तिवारी जी ने पूछा था, 'कहो जहूर मियाँ कहाँ रहे इतने दिन...?'

'शहर ही में था...परसों रामनवमी थी...जुलूस में झण्डा पकड़े चलना था...।' वह तपाक से बोल उठा था।

'आ जाया करो मियाँ...तुम आते हो तो रौनक लौट आती है...।'

'आ ही तो जाता हूँ...जहूर मियाँ के पास दुनिया भर के काम हैं...'

'इतनी देर से क्यों आते हो...ज़िंदगी का क्या भरोसा...कब दगा दे जाए...।'

'ऐसा नहीं कहते तिवारी साब, अभी तो हमने कई सालों तक जीना है...कई कुछ देखना है...ऐसे थोड़े मरने दूँगा आपको...।'

'फिर भी...जाने क्यों चिंता-सी लगी रहती है तुम्हारी...।'

'मुझे कुछ नहीं होगा...अगर कुछ हो भी गया तो ख़ुदा कसम क़ब्र से भी उठकर मिलने आ जाया करूँगा..।'

'यही बातें सुनने को तो तरस गया था, कई दिनों से...।'

'जब कहोगे...आ जाया करूँगा...।'

'कहाँ ख़बर भिजवाऊँ...कितनी बार कहा है, एक मोबाइल फ़ोन रख लो...तुम्हें शहर में ढूँढ़ना बहुत मुश्किल है...'।

'जमाल मियाँ के चाय के खोखे पर तो ख़बर भिजवा सकते हैं...।'

'तुम आ जाया करो मियाँ...दिल बहल जाता है...।'

'खाना नहीं खिलाओगे...?'

'कभी बिना खाना खिलाए...वापस भिजवाया है तुम्हें...।'

'नहीं तो...भूख लगी थी, बोल दिया...।'

'जहूर मियाँ...सुना है...तुम क़ब्रगाह में जाकर मर गए मित्रों को गालियाँ निकालते हो...उलाहने करते हो...जाने क्या-क्या बुरा-भला कहते हो उन्हें...ऐसा करने से वे लौट आएँगे...??'

'क्या करूँ...वे सभी दगाबाज़ हैं...एक-एक करके चलते बने...।'

'यहाँ कोई भी नहीं टिकने वाला...तुम टिकोगे...?...बोलो?'

'ज़रूर...देखना ख़ुदा को भी टरका जाऊँगा...अभी मरने वाला नहीं मैं...देख लेना...।'

तिवारी जी आशंकित हुए थे, 'अभी मरना भी मत...तुम्हारी अभी ज़रूरत है...।'

'किसे...??' वह बौखला उठा था।

'मेरे एक लेखक मित्र हैं...जानते ही हो...जिनकी जाने कितनी कहानियाँ सुनाई हैं तुमें...चौपाल में बैठकर...' तिवारी जी की आँखों में चौपाल में बैठने वाले दूसरे शख़्स उतर आए थे।

'वही जो पठानकोट में रहते हैं...' जहूर मियाँ बोला था।

'तुमें अक़्सर याद करते रहते हैं...हर ख़त में...।'

'वे यहाँ आएँगे?...कब आ रहे हैं...?'

'ज़रूर आएँगे...और तुमसे मिलेंगे भी...बतियाऐंगे भी...तुमसे गले भी मिलेंगे....और.... तुम्हारे किस्से भी सुनेंगे...।'

'पर...डर लगता है...' जहूर मियाँ को पहली बार काँपते हुए देखा था।

'काहे का डर...?'

'बयासी साल का बूढ़ा...तब तक ज़िन्दा रहेगा भी...?'

'तुम अभी कहाँ मरने वाले हो...।'

'क्यों मज़ाक करते हो तिवारी स्साब...आपका जहूर मियाँ पट्टा लिखवा के तो आया नहीं...? मरना फिर झूठ थोड़े है...।' उसे पहली बार उदास देखा था।

एकाएक ईलाइट चौराहे वाली मस्जिद की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए जहूर मियाँ का शिथिल हुआ चेहरा आँखों में रेंगने लगा था।

उस दिन भी उसने भर पेट खाना खाया था। जमकर ठहाके लिए थे। दुनिया भर की बेतुकी बातें की थीं। मरे हुए दोस्तों को गालियाँ निकाली थीं...ख़ुदा से शिकवे किए थे...अपने शहर ही में मरने के सपने देखे थे...अपनी मरी हुई बीवी को स्मरण किया था। मसखरों की-सी हरकतें की थीं...मसखरा ही तो था वह...अब तक उसने सिवाए इन हरकतों के अलावा किया ही क्या है...शहर की पहचान ही तो है वह...।

वह चला गया था, शहर की गलियों में घुमक्कड़ी करने...अपने ख़स्ताहाल एक कमरे के किराए वाले घर में...सड़कों पर निकलने वाले जुलूसों में शामिल होने...जलसों में शामिल होने...

कितने दिन हो गए हैं उसे देखे हुए...तिवारी जी के दिल पर आशंकाओं के दायरे फैल आए हैं...शहर के उसके अन्य परिचित लोगों से पूछताछ करके ही उन्हें चैन मिलेगा...तिवारी जी कसमसा उठे थे। सुखन पण्डित के अलावा ओम शंकर से भी पूछा था। पठानकोट वाले उसके लेखक मित्र का झाँसी में आना अभी तय नहीं हो पाया...लेकिन...जहूर मियाँ उसकी कहानियों में किसी पात्र की तरह पालथी मारे बैठे हैं...वे अपनी हर चिट्ठी में उसका कुशलक्षेम पूछते हैं...फ़ोन वार्ताओं का विषय भी जहूर मियाँ ही हो गए हैं...इससे पूर्व वे मनिया मौसी पर भी भरे मन से उपन्यास लिखने का मन बनाए हुए हैं...अब जहूर मियाँ उनकी कहानियों में उतरेंगे तो झांसी की गलियाँ ज़िंदा हो उठेंगी...उनका शहर चर्चा के घेरे में आ जाएगा...पंजाब की फ़िजाओं में भी जहूर मियाँ के क़िस्से गूँज उठेंगे...

पिछले हफ़्ते पठानकोट वाले लेखक मित्र का पत्र आया था। वे अभी भी जहूर मियाँ से मिलने का सपना पाले हुए हैं... लेकिन... झाँसी में अभी आ पाने की असमर्थता से भीतरी मन से आहत हैं... इस बार उन्होंने जहूर मियाँ के नाम एक पत्र भिजवाया है...फिर यह उनकी विशाल हृदयता ही तो है...वरना...दिनभर सड़कों पर आवारागर्दी करने वाले उस अनाम शख़्स को कोई स्मरण करता है? कौन बार-बार उसकी कुशलक्षेम पूछता है??

कितने दिनों से वह पत्र लिए उसे खोज रहे हैं...लेकिन...जहूर मियाँ का कोई अता-पता नहीं...तिवारी जी अटकलें लगा रहे हैं कि निस्संदेह वह अपने किसी बेटे के पास चला गया होगा...क्या पता उसका मन एकाएक बनारस जाने का बन गया होगा...फिर उसकी प्रमुख आदतों में भी तो यही शुमार रहता था कि पता नहीं वह कहाँ मिले...किसी क़ब्रगाह में...सीपरी बाज़ार वाले चर्च की सीढ़ियाँ बुहारते हुए, चित्रा चौरहे वाले मंदिर के लंगर में पंक्ति में बैठे हुए खाना खाते हुए, शहर के किसी गुरुद्वारे में संगत के जूठे बरतन माँझते हुए...इस बार भी निस्संदेह शहर की क़ब्रगाह ही में मिलेगा वह, क़ब्रों पर झाड़ू लगाते हुए...फिर से उन क़ब्रों पर कूची से सफ़ेदी करते हुए...मरे हुए दोस्तों को गालियाँ देते हुए...खुदा से उलाहने करते हुए...ऊँची आवाज़ में चिल्लाते हुए...

तीसरे दिन उसके पड़ोस में रहने वाले रेलवे से सेवानिवृत साथी सुखन पण्डित ने उसके बारे में ढेर- सी जानकारियाँ दी थीं...उसके मरने की ख़बर सभी के लिए अविश्वसनीय होने लगी थीं। तिवारी जी भी हक्के-बक्के रह गए थे। सच ही इस बार उसे क़ब्रगाह में ही देखने जाना था...वह अब वापस थोड़े आएगा...वहाँ से कभी कोई वापस आया है? वह कहीं दूसरी जगह जा भी नहीं सकता था...

पठानकोट वाले लेखक मित्र का पत्र अब और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है...क्योंकि पत्र में भी यही आशंका थी...जहूर मियाँ के मरने का डर था...उससे कभी भी भेंट न कर पाने का दंश था...उम्र के आख़िरी पड़ाव पर चल रहे शख़्स के प्रति ऐसी आशंकाओं का पनपना झूठ थोड़े होता है...

जहूर मियाँ को तिवारी जी के लेखक मित्र का दिल रखना चाहिए था...उनकी प्रतीक्षा किए बिना मरना नहीं चाहिए था...अब...पठानकोट वाले लेखक मित्र को सलीके से समझाना होगा कि झांसी शहर की गलियों में से एक मसखरा अलोप हो गया है. . . अब वे उससे कभी मिल नहीं पाएँगे...उसके गले नहीं लग पाएँगे...उसे झाँसी की गलियों में आवारागर्दी करते हुए देखने की अपनी इच्छा का स्वयं वध कर देना होगा...उसकी मौत की ख़बर झूठी हो ही नहीं सकती...

000

कथा-कहानी

कजरी का प्रेम

मुरारी गुप्ता

यह हिंदुस्तान में ब्रिटानी हुकुमत के दौर का वक्त था। दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ चुका था। एक और मित्र राष्ट्र फ्रांस, ब्रिटेन, अमरीका और रूस थे तो दूसरी ओर जर्मनी, इटली और जापान। ब्रिटानिया हुकुमत ने युद्ध के लिए हिंदुस्तान से लड़ाकों की भर्ती का ऐलान कर दिया था। और जो पहले से भर्ती हुए थे उन्हें हिंदुस्तान की सरहद से मीलों दूर यूरोप की ठंडी धरती पर लड़ने के लिए भेजा जाने लगा। ब्रिटिश हुकुमत की ओर से हज़ारों-लाखों की संख्या में हिंदुस्तानी लड़ाकों की टोलियाँ जहाज़ों में भर-भर कर यूरोप की ओर रवाना होने लगी। इन्हीं टोलियों में मौजूद था जयपुर के पास बोबूँदा क़स्बे का बाइस साल का लंबी कद काठी का प्रेम सिंह। पूरा ख़ानदान फौज में सेवाएँ देता आ रहा था। प्रेम सिंह को तो फौज में जाना ही था। और ब्रिटिश हुकूमत की फौज में शामिल होने के चार साल बाद ही उसका नंबर यूरोप जाकर मित्र राष्ट्रों की फौज में शामिल होने और जर्मनी की फौज से दो-दो हाथ करने के लिए आ गया था। जोश और जुनून से भरा प्रेमसिंह पहली नज़र में ब्रिटिश कमांडर का ध्यान आकर्षित करने में कामयाब रहा। ब्रिटिश कमांडर ने उसे उसकी पलटन का सैकंड मैन नियुक्त कर दिया था।

दूसरे विश्व युद्ध के शुरूआती कुछ महीनों तक मित्र राष्ट्रों की फौज जर्मनी से हार रही थीं। तब तक प्रेम सिंह की पलटन को रिज़र्व में रखा था। उन दिनों वह अपनी पलटन की तमाम व्यवस्थाएँ पूरी करने के बाद घर में महीनों से उसका इंतज़ार कर रही नव विवाहिता पत्नी कजरी की यादों में डूब जाता था। प्रेम सिंह की शादी को अभी साल भर भी नहीं बीता था। इस एक साल में भी छह महीने तो ब्रिटिश फौज की नई तैयारियों में दिल्ली में निकल गए थे। बाकी छह महीने में से भी बहुत कम वक्त वह कजरी के साथ रह सका था। भरे-पूरे परिवार में उस वक्त पत्नी के साथ एकांत में वक्त गुज़ारना बिलकुल अच्छा नहीं माना जाता था, लेकिन फिर भी प्रेम सिंह किसी न किसी बहाने कजरी के पास जाकर बैठ जाता था। कजरी उसे ब्रिटिश सरकार की फौज में शामिल होने और लड़ाई के लिए समंदर पार नहीं जाने के लिए बहुत मान मनुहार करती थी। वह उसे ताना देकर कहती थी कि पैसों के लिए इस गोरी सरकार के लिए क्यूँ अपना खून बहाते हो। अगर तुम्हें खून ही बहाना है तो सुभाष बाबू की फौज में क्यों नहीं शामिल हो जाते। अगर तुमको जीत भी नहीं मिली तो इससे सुभाष बाबू के साथ तुम्हारा नाम भी अमर हो जाएगा। गोरी सरकार के लिए लड़कर हमें क्या हासिल होगा। लेकिन प्रेम सिंह उसकी बातों को तवज्जो नहीं देता था। वह उससे कहता था- हमारे दादा और परदादा गौरी सरकार के मुलाज़िम रहे हैं। अब मैं उस परंपरा को नहीं तोड़ सकता। वैसे भी ब्रिटिश हुकूमत इस युद्ध के बाद तो हिंदुस्तान को आज़ाद करने वाली ही है।

सात समंदर पार पोलैंड की धरती उसे बिलकुल रास नहीं आ रही थी। यहाँ की ठंड को वह सहन नहीं कर पा रहा था। कुछ ही महीनों बाद उसे न्यूमोनिया हो गया था। इलाज के दौरान उसने कजरी को दर्जनों पत्र लिखे और अपनी कुशलता का समाचार देता रहा। कजरी उसके पत्रों को देखकर अपना मन बहला लेती थी। यहाँ से जाते-जाते प्रेम सिंह उसे अपने प्रेम की निशानी दे गया था। न्यूमोनिया का इलाज कराते वक्त उसे बोबूँदा से पत्नी का ख़त मिला और उसमें

मुरारी गुप्ता
ई-37 ए, शंकर विहार, अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट के सामने, जवाहर सर्कल,
जयपुर-302017 (राजस्थान)
मोबाइल- 9414061219

ख़ुशख़बरी मिली थी कि कजरी ने एक प्यारी सी बेटी को जन्म दिया है। प्रेम सिंह कजरी के इस पत्र को पढ़कर बहुत खुश हुआ और अपनी पलटन में मिठाई बाँटी।

लेकिन जैसे-जैसे दिन गुज़रते जा रहे थे और मित्र राष्ट्रों की सेनाओं की जीत के समाचार मिल रहे थे। कजरी को लग रहा था कि उसका प्रेम अब जल्द ही घर लौट आएगा। कई महीनों तक उसे पत्र और संदेश मिलते रहे कि उसका प्रेम किस पलटन में और कौन से मुल्क की सेनाओं से लड़ रहा है। लेकिन जैसे-जैसे यह लड़ाई लंबी चलने लगी, प्रेम सिंह के पत्रों का सिलसिला भी थमने लगा। और कुछ महीनों बाद बंद हो गया था। कजरी की चिंता बढ़ने लगी। उसके मन में कई तरह की आशंकाएँ जन्म लेने लगीं। महासमर में ब्रिटिश हुकुमत के हज़ारों सैनिकों के काम में आने के समाचार उसे मिलने लगे थे। उसके भीतर टीस उठी कि कहीं.....! लेकिन उसने अपनी उस आशंका को खुद ही ख़ारिज कर दिया।

महीनों की जगह अब वर्षों ने ले ली थी। प्रेम सिंह को दो साल से ज़्यादा हो गए थे। और पिछले डेढ़ साल से उसकी कोई भी चिट्ठी कजरी को नहीं मिली थी। वह किससे अपनी पीड़ा कहती। अठारह-उन्नीस साल की नव यौवना कजरी चिंता में घुलने लगी। वह सारा दिन अपनी बेटी की देखभाल में लगी रहती थी। प्रेम सिंह के दो बड़े भाई और पिता उसे कुछ महीनों तक तो तसल्ली देते रहे कि प्रेम जल्द ही जीतकर लौटेगा, लेकिन जब हर दिन हज़ारों सैनिकों के लड़ाई में काम आने के समाचार मिलने लगे तो प्रेम सिंह के घरवालों ने सीने पर पत्थर रखकर समझ लिया था कि उनका प्रेम भी लड़ाई में काम आ गया।

दूसरा विश्व युद्ध ख़त्म हो गया था। युद्ध में बचे खुचे सैनिक लौट आए थे। कजरी का भरोसा कायम था। बहू की ज़िद पर प्रेम सिंह के पिता उसे लेकर दिल्ली पहुँच गया था। बचे हुए सैनिक दिल्ली के लाल क़िले में इकट्ठा हो रहे थे। ब्रिटिश हुकूमत उन्हें अवार्ड देकर घर लौटा रही थी। कजरी का भरोसा था कि उसका प्रेम भी लाल क़िले के मैदान में होगा और उसे देखते ही वह दौड़ा हुआ आएगा। मगर, लौटे हुए सैनिकों में कजरी को कहीं भी उसका प्रेम नज़र नहीं आया। कई दिनों तक लाल क़िले में इंतज़ार के बाद वह उदास और बैरागी सी होकर वापस लौट आई। मगर उसका भरोसा अभी तक टूटा नहीं था। प्रेम सिंह उससे वादा करके गया था कि वह ज़रूर लौटेगा। वह उसके वादे को कैसे नकार सकती थी।

वक्त बीतता गया। कजरी की बेटी सात साल की हो गई। पूरे बोबूँदा में ख़ूबसूरती की मिसाल कजरी कुछ ही सालों में जैसे बुढ़ा गई थी। उसका ख़ूबसूरत चेहरा मलीन हो गया था। उसका दिन तो बेटी, खेत और गायों की देखभाल में गुज़र जाता था। मगर शाम होते-होते उसके भीतर टीस सी उठने लगती थी और उम्मीद लिए वह बोबूँदा के बाहर ताँगा स्टैंड तक दौड़ कर आती थी। कजरी का हर शाम ताँगा स्टैंड तक आने का सिलसिला जारी था। घर की सभी बुज़ुर्ग औरतें, प्रेम सिंह के दोनों भाई, पिता और पूरा बोबूँदा क़स्बा मान चुका था कि प्रेम सिंह लड़ाई में काम आ गया है। लेकिन कजरी इस बात को अभी तक मानने को तैयार नहीं थी। उसने अपना रोज़ का शृंगार करना नहीं छोड़ा था। न चूड़ियाँ उतारी थी और न ही माँग में सिंदूर भरना बंद किया था। वक्त के साथ घर की व्यवस्थाएँ बदली। प्रेम सिंह के दोनों भाइयों ने अपने परिवार, घर-बार खेत खलिहान अलग कर लिये थे। प्रेम सिंह का बूढ़ा बाप और माँ कजरी के साथ रहने लगे।

उन्हीं दिनों पड़ोसी फौजी बाहुल्य क़स्बे से उड़ती उड़ती खबर आई कि वहाँ लौटे किसी फौजी ने प्रेम सिंह को कुछ साल पहले जर्मनी के क़ब्जे वाले कांगों देश की एक जेल में देखा था। उस फौजी के हवाले से कहा गया था कि जर्मन सैनिक दुश्मन देश के क़ैदी सैनिकों को ज़्यादा दिन तक ज़िंदा नहीं रखते। वे उसे गोली मार कर उड़ा देते हैं। कुछ लोगों से उसने उड़ती-उड़ती खबर सुनी कि ब्रिटिश हुकूमत अपने कैदियों को छुड़वाने के लिए जर्मनी पर दबाव बना रही है। मगर लगता नहीं है कि बौखलाया हुआ जर्मनी इतनी आसानी से अपनी क़ैद में मौजूद ब्रिटिश फौज को ज़िंदा जाने देगा। इन ख़बरों से कजरी के मन में उम्मीद के साथ डर भी बैठ गया था। इन ख़बरों के बाद भी कई साल बीत गए थे। कजरी के दिन उदासी और बेचैनी में गुज़रने लगे।

हिंदुस्तान की आज़ादी से कुछ महीनों पहले की बात है। सर्दियों ज़ोरों से पड़ रही थी। कजरी हर दिन की तरह उदास होकर ताँगा स्टैंड जाकर लौट आई थी। उस रात उसे अपने खलिहान में कटी पड़ी फसल की जानवरों से रखवाली के लिए खेतों पर रुकना था। अँधेरा काफी गहरा गया था। कजरी को ऊँट पर आते हुए किसी हरकारे की आवाज़ सुनाई दी। उसे कुछ पल के लिए लगा कि वह आवाज़ थोड़ी सी जानी पहचानी है। लेकिन उसने उसे अनसुना कर दिया। कजरी ने सोचा कि क़स्बे के जागीरदार के लिए शहर से कोई संदेश आया होगा। उन दिनों जागीरदारों और सामंतों के लिए सरकारी संदेशवाहक इसी तरह हरकारा लगाते हुए आया करते थे। उसने सुना था कि अंग्रेज़ हिंदुस्तान से वापस जाने वाले हैं और हिंदुस्तान में कोई नई हुकुमत बनने वाली है। नेहरू और गाँधी मिलकर हिंदुस्तान की सरकार बना रहे हैं। तब ही उसने फिर से उस हरकारे की ऊँची आवाज़ सुनी। वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए कह रहा था कि बोबूँदा वालों तुम्हारा जवान जर्मनी को हराकर लौट आया है। अंग्रेज़ सरकार ने उसे विक्टोरिया क्रॉस से नवाज़ा है। कजरी खलिहानों से पगडंडियों पर दौड़ती हुई क़स्बे की ओर जाने वाली कच्ची सड़क तक पहुँची। आसपास के खेतों में काम करने वाले भी उस हरकारे को देखने तेज़ कदमों से चलने लगे। कई लोगों का जमघट लग गया था। ऊँट पर बैठा हुआ वह सवार कूदकर ज़मीन पर उतर गया था। वह ब्रिटिश हुकूमत की फौजी ड्रेस में था। खाकी नेकर, खाकी बुशर्ट, खाकी साफा और घुटनों तक अंग्रेज़ी बूट पहने वह तनकर खड़ा था। रात का दूसरा पहर था। थोड़ा अँधेरा था, लेकिन कजरी की नज़रों को बिलकुल भी धोखा नहीं हुआ।

000

मोंटू

सरस दरबारी

सरस दरबारी
66 लूकरगंज, प्रयागराज-211001
मोबाइल- 8853659917
ईमेल- sarasdarbari@gmail.com

देश ने बहुत तरक्की की है। फलस्वरूप लोगों के पास पैसा भी बहुत है और उसका असर हमारी जीवन शैली पर, उससे भी अधिक हमारी समस्याओं पर साफ दिखाई देता है। अब यही देख लीजिये। हर घर में आपको कम से कम एक चार पहिया तो ज़रूर दिखाई देगी, एक आध दो पहिया भी। अब चलेंगे तो यह सब उन्हीं बरसों पुरानी सड़कों पर ही न। और नतीजा, ट्रेफिक जाम, गाड़ियों के चिल्ल पों के बीच अराजकता से दो पहिया वाहनों की कलाबाज़ियाँ। बस इसीलिए पतिदेव और हम कहीं भी भीड़ में जाने से कतराते हैं। उन्हें भीड़ से एलर्जी और हमें चिल्ल पों से। एक दिन कोई ज़रूरी काम था, तो सोचा, चलो भरी दोपहरी निकलते हैं, भीड़ कम मिलेगी। पर जल्दी ही हमारा यह भ्रम टूट गया। सिविल लाइंस में इतनी भीड़, कि सभी गाड़ियाँ चूल से चूल मिलाकर चल रहीं थी।

तभी अचानक बगल में शोर सुनाई दिया, और हमारी खिड़की के शीशे से कोई ज़ोर से टकराकर, लुढ़ककर कार के बोनट पर आ टिका। हालाँकि कार भीड़ की वजह से धीमे-धीमे रेंग ही रही थी, इन्होंने चौंककर ब्रेक लगाया तो वह व्यक्ति गिरते-गिरते बचा। उसने घूरकर इनकी तरफ ग़ुस्से से देखा। किसी ने उसे बहुत पीटा था और बचने के चक्कर में वह दौड़कर हमारी गाड़ी से टकरा गया था। मैले कुचैले कपड़े, बेतरतीब बढ़ी दाढ़ी, उलझे बालों में फँसे तिनके और सरकंडे, चेहरे पर कई जगह चोट के निशान, होठों के पास से रिसता ताज़ा ख़ून और खोहों से झाँकती आँखें जिनसे अंगारे बरस रहे थे। उसका चेहरा विद्रूप लग रहा था। अनहोनी का अंदेशा, मन पर हावी हो रहा था, कहीं उसने कोई पत्थर उठाकर शीशे पर मार दिया तो। एक दहशत तारी थी, तभी उसकी नज़र इनपर पड़ी। इन्हें देखते ही वह जैसे सहम सा गया। अंगारों की सुर्ख़ी, बेबसी और शर्मिंदगी में बदल गई और वह हाथ के इशारे से माफ़ी माँगता हुआ, गाड़ियों के बीच से होता हुआ, गुम हो गया।

मैं अवाक् थी। यह सब कुछ इतने अचानक हो गया था कि मन स्थिर नहीं हो पा रहा था। तभी इन्होंने पूछा-

"इसे पहचाना?"

"नहीं तो ...कौन है?"

"याद करो मिल चुकी हो उससे। बहुत अच्छे से पहचानती हो।"

मैं दिमाग़ पर ज़ोर डालने लगी। कौन हो सकता है? यह इतने कॉन्फ़िडेंस से कह रहे हैं कि मैं इसे जानती हूँ, कैसे संभव है। मैं तो इसे पहली बार देख रही हूँ।

"यह मोंटू है"...कहकर यह सामने देखने लगे। ट्रैफिक बढ़ने लगा था और गाड़ियों ने रफ़्तार पकड़ ली थी।

"कौन मोंटू"...यह सवाल मैंने इनसे नहीं अपने आप से पूछा।

फिर अचानक याद आया, " मोंटू..!"

दुर्गा पूजा का पंडाल सजा हुआ था। घर के सामने ही एक बड़ा सा प्लेग्राउंड है जहाँ पर हर साल दुर्गा पूजा का आयोजन होता है। खूब सारे झूले लगते हैं, स्टाल्स सजते हैं, खूब चहल पहल रहती है। उस वर्ष तो एक सौ पच्चीसवाँ वर्ष मनाया जा रहा था, पंडाल बहुत ही ख़ूबसूरती से सजाया गया था। उसे विक्टोरिया मेमोरियल का भव्य रूप दिया गया था।

शाम को काम निबटाकर इन्ही के साथ गई थी माँ के दर्शन करने। खचाखच भरा हुआ पंडाल।

सिंदूर मिश्रित धुएँ में लोबान महक रहा था। चौड़े पाट की सुंदर ढाकाई साड़ियाँ पहनें, माँग में सुर्ख लाल सिंदूर भरे, माथे पर बड़ी सी जगमगाती सिंदूर की बिंदी, काजल से भरी पलकें शरमाकर झुकाती हुई, सजी-धजी सुंदर स्त्रियाँ। चारों तरफ बंगाल का जादू छाया हुआ था। मैं बड़ी मुश्किल से प्रतिमा तक पहुँच पाई थी। कितना भव्य...!.कितना मोहक स्वरूप था माँ का। आँखें नहीं ठहर रहीं थीं। लगा जैसे माँ बड़े प्यार से मुझे देख रही हैं। मैं एकटक माँ का चेहरा, माँ की आँखें देखती रही और देखते ही देखते माँ की प्रतिमा धुँधली हो गई। अद्भुत था वह अनुभव ..!!!

माँ मुस्कुराकर देख रही थीं और मैं निहाल हुई जा रही थी। यह मौन वार्तालाप ढाक की आवाज़ से टूटा।

ढाकी बड़े-बड़े परों से सजे ढोल बजा रहे थे और बीच में खुली जगह पर एक सुन्दर सा युवक हाथों में धुनुची थामे धीरे-धीरे ढाक की थाप पर झूम रहा था। उसके चेहरे की आभा देखते ही बनती थी। सुन्दर सुगठित गोरा शरीर, मुख मंडल पर दिव्य तेज़, शरीर पर जनेऊ और एक धोती पहन वह नंगे बदन, नंगे पैर, बड़ी मस्ती से ढाक की थाप से ताल मिला रहा था।

यद्यपि वहाँ दो और नवयुवक धुनुची लेकर नृत्य में मगन थे पर पंडाल में सबकी आँखें इसी पर टिकी थीं। धीरे-धीरे ढाक की ताल ने ज़ोर पकड़ना शुरू किया। तेज़ होती थाप पर वह उन्मत्त होकर, लय से लय मिलाता हुआ करीब एक घंटे तक नृत्य करता रहा। इतने धुएँ, गर्मी और घुटन के बावजूद, लोग मंत्रमुग्ध हो उसका नृत्य देख रहे थे। कोई भी पंडाल छोड़कर नहीं जाना चाहता था।

जब ढाक थमा तो सुर्ख चेहरा लिए, पसीने में लथ-पथ, वह पंडाल के घुटन भरे माहौल से बाहर खुली हवा में आकर खड़ा हो गया। भीड़ छंट चुकी थी। कई लोग झूले और खाने के स्टाल्स की तरफ बढ़ चुके थे। हम लोग भी सबसे मिलते मिलाते बाहर खुली हवा में आकर खड़े हो गए। वह सुन्दर युवक वहीं खड़ा था। एक अजीब सी तृप्ति थी उसके चेहरे पर।

इन्हें देखते ही इनके पास आया और श्रद्धा से पैर छुए। इन्होंने मिलाया "यह मोंटू है, सेन जी का भतीजा"। बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर बोला, "नोमोश्कार बोउदी" दमकता हुआ चेहरा, आँखों में शरारत, और चेहरे पर स्मित हास। वह चेहरा जैसा मन में अंकित हो गया था। पर आज जब उन आग उग़लती आँखों को अचानक सहमते देखा, तो लगा यह वह मोंटू तो नहीं जिसे मैं जानती हूँ।

दुर्गा पूजा के बाद मोंटू से अक्सर मोहल्ले में भेंट होती रहती। वह एक बहुत अच्छा चित्रकार था, अक्सर उसकी पेंटिंग्स की प्रदर्शनी लगती। इनसे विशेष अनुरोध कर इन्हें उन प्रदर्शनियों में आमंत्रित करता। हमें तो हमेशा से ही पेंटिंग का बहुत शौक रहा, यद्यपि हमारे पतिदेव को इसमें बिलकुल भी रुचि नहीं थी, फिर भी हमारा मन रखने के लिए वे चले चलते।

एक से बढ़कर एक पेंटिंग...! उसकी पेंटिंग्स देखकर हमेशा लगा कि बहुत ही कोमल हृदय का, बहुत ही संवेदनशील युवक है मोंटू। स्टेज प्रोग्राम्स में इतना सुंदर रोबिनदर शोंगीत गाता, कि दर्शक मोहित हुए बिना न रह पाते। एक अजीब सी कशिश थी उसके स्वर में, मानों कोई दबी हुई पीड़ा निकास खोज रही हो। जितना उसे जानते गए, उतना ही उसके विषय में कौतूहल बढ़ता गया।

सुना था उसके पूर्वज कई पीढ़ियों से इलाहाबाद में ही बसे हुए थे। दादा परदादा ने खूब जायदाद, बना ली थी। उसके पिताजी स्वयं एक बहुत ही सफल बिज़नसमैन थे। उनकी अपनी काफी मिल्कियत थी। पुश्तैनी जायदाद तो खैर थी ही। पर मोंटू में रईसी का कोई दंभ न था। न ही कोई ऐब। बहुत ही सौहार्दपूर्ण स्वभाव का धनी। अक्सर उसे सड़क के कुत्तों को बिस्कुट खिलाता देखते। पूरा परिवार एक साथ रहता था। सबके हिस्से बँटे हुए थे। उसके ताऊ, चाचा और उनके परिवार अपने-अपने हिस्सों में रहते थे।

सब कुशल मंगल था, जब एक दिन पता चला कि उसके माता-पिता, एक सड़क हादसे में मारे गए। वे लखनऊ से एक शादी से लौट रहे थे। अँधेरा होना शुरू हो गया था। एक ट्रक से टकरा कर उनकी गाड़ी एक खड्ड में गिर गई थी। दोनों की वहीं घटना स्थल पर मृत्यु हो गई थी। और यहीं से मोंटू की ज़िंदगी ने पल्टा खाया।

अब वह बिलकुल अकेला हो गया था। उदास रहने लगा था। उसका किसी चीज़ में मन न लगता। उसने लोगों से मिलना-जुलना बंद कर दिया। उसने फुटबॉल की कोचिंग भी बंद कर दी। मोहल्ले में दिखाई देना बंद हो गया। नज़रों से जो ओझल हुआ तो दिमाग से भी बिसरता गया।

बीच में उड़ती-उड़ती ख़बर कानों में पड़ी थी, कि जायदाद के लिए घर में झगड़े होने शुरू हो गए थे। थोड़े दिनों बाद सुनने में आया

कि जायदाद के पीछे मोंटू को उसके रिश्तेदार उसे जायदाद से बेदखल करवाने के लिए पागल करार करने पर तुले हैं। विश्वास नहीं हुआ, ऐसा भी हो सकता है। सुनने में आया कि उसे इंजेक्शन लगाए जाते हैं, जिनसे वह नीम बेहोशी की हालत में रहता है। यह भी सुना कि उसे कमरे में बंद करके पीटा जाता है। हम लोगों ने बातों को अफवाहें समझ कर भुला दिया।

पर उस दिन मोंटू को जब सिविल लाइंस में उस बदहवास हाल में देखा तो उन अफवाहों पर विश्वास हो गया। रह रहकर उसके वह दोनों चेहरे, आँखों के सामने उभरते रहते। सुंदर मेधावी भोला सा मोंटू, जिसके मन में सबके लिए स्नेह था। जो हर किसी के सुख-दुख में खड़ा रहता था। और फिर धीरे-धीरे उस सुंदर गोरे चेहरे पर निशान उभरने लगे, चोटों के, रिसते खून के, उलझे बाल, खिचड़ी दाड़ी के, और वह चेहरा मलीन हो गया। चेहरे पर झलकता आत्मविश्वास दहशत बन गया, अंगार बरसाती आँखें, जैसे मुझ ही से पूछ रही थीं, कोई मेरी तरफ देखे, क्या गुनाह था मेरा, किसकी सज़ा मिली है मुझे। और मुँह से एक ही बात निकली, "छि ...क्या इंसान पैसे के लालच में इतना गिर सकता है। क्या लालच मनुष्य को इस दर्जा भी हिंसक, असंवेदनशील बना सकता है कि उसका विवेक उसकी अंतरात्मा ही विक्षिप्त हो जाए। लोग दौलत के पीछे बेतहाशा भागते हैं, किस काम की ऐसी दौलत, जो इंसान से उसकी इंसानियत, छीन उसे हैवान बना दे। और उन हैवानों की बली चढ़ें मोंटू जैसे बेबस, भोले भले लोग!"

सिविल लाइंस में हुए हादसे से मन बहुत खिन्न हो गया था। जितना मोंटू के विषय में सोच रहे थे, मन उतना ही उदास होता जा रहा था। माहौल को गंभीर होता देख इन्होंने बात का रुख बदलना चाहा।

"जानती हो, एक समय था, जब इलाहाबाद की सड़कों पर वाहन दिखाई ही नहीं देते थे। अरे कुल इक्का दुक्का तो गाड़ियाँ रहतीं थीं सड़कों पर, वह भी यहाँ के रईसों की। धीरे-धीरे समृद्धि आई तो गाड़ियाँ बढ़ीं।

तब भी सिविल लाइंस, में इतनी भीड़ नहीं थी। लोग यहाँ गाड़ी सीखने आया करते थे। यही सड़कें तब कितनी चौड़ी लगा करतीं थी। और अब देखो...!"

"अब तो स्मार्ट सिटी बनाने चले हैं इलाहाबाद को। देखते-देखते शहर की काया ही पलट गई है। मॉल कल्चर को ही देख लो। कहाँ लोग पार्क की एंट्रेन्स फी देने में आना-कानी करते थे, अब देखो सेंकड़ों रुपये फूँकने की होड़ में लगे रहते हैं। अजीब हाल है।"

"अरे तो क्या मतलब आपका, हम तरक्की न करें।"

"अरे करो भाई, खूब करो, पर सड़कें भी तो चौड़ी करो। गाड़ी तो चैन से चला सकें।"

बातों ही बातों में हाई कोर्ट आ गया। अब फिर भद्दी-भद्दी गालियाँ शुरू हो गईं।

हम बिगड़े, "क्या है भाई। कितना फालतू बोलते हैं।"

"अच्छा बताओ, बिगड़ने की बात है कि नहीं, वह देखो, ...देखो देखो। वह वकील साहब फ़ाइल पढ़ते हुए सड़क यूँ क्रॉस कर रहे हैं, जैसे सड़क नहीं कंपनी गार्डेन में टहल रहे हों। और मुँह में पान की पीक भरे, हाथ का इशारे से ट्रेफिक को रोकते हुए ऐसे जा रहे हैं, जैसे उनके बाप की सड़क हो....!"

फिर एक मोटी भद्दी सी गाली ...!

"हॉर्न बजाओ, तो ऐसे घूरते हैं, मानों यहीं कंटेम्प्ट ठोक देंगे। स्साले ...!"

गनीमत है, इतने पर ही रुक गए पतिदेव। हम तो आतिशबाज़ी की पूरी लड़ी के इंतज़ार में थे। ख़ैर लब्बोलुआब यह, कि जिस वजह से उन्होंने यह बातचीत शुरू की थी, उसमें सफल हो गए थे। घर पहुँचते-पहुँचते, हम दोनों का मूड ठीक हो चुका था।

उस हादसे के बाद मोंटू अक्सर दिखाई देता कभी सिविल लाइन्स में, कभी मोहल्ले में कभी रेलवे स्टेशन के पास...! कभी गली मोहल्लों में घूमता, बड़बड़ाता फिरता...पत्थर लेकर कभी लोगों को दौड़ाता और फिर ठहाके लगाकर हँसता। कभी अपने से ही ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर बातें करता...कभी चुपचाप दीवारों की आड़ में बैठा रोता मिलता।

जब-जब उसे देखती एक तेज़ नुकीली सलाख जैसे अंतर को भेद जाती। अक्सर लोगों को दु:ख से कातर हो कहते सुना था "अब यह दर्द और बर्दाश्त नहीं होता, यह मुझे पागल कर देगा..." तब याद आ जाते सड़कों पर घूमने वाले वह लोग जिन्हें लोग पागल कहकर उनका मज़ाक उड़ाते, बच्चे पत्थर फेंकते और वह अपने को कभी बचाते कभी वार करने के लिए खुद पत्थर उठा लेते। बहुत तरस आता उनपर। कितना दर्द सहा होगा उन्होंने की आज उसका एहसास ही ख़त्म हो गया.. कितनी यातनाएँ सही होंगी इन लोगों ने कि शरीर, आत्मा, एहसास सब सुन्न हो गए, और अन्तत: वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठे और वाकई पागल हो गए।

उसका यह हाल देखकर एक बार इनसे कहा, कि क्या हम इसका इलाज नहीं करवा सकते। इतना टैलेंटेड लड़का है, अगर इसे कोई अच्छा डॉक्टर मिल जाए तो शायद यह ठीक हो जाए। नॉर्मल हो जाए।

यह बोले, दुनिया में ऐसे बहुत लोग हैं, किस किसका इलाज करवाओगी। और फिर, यह किसी के घर का मामला है, हम कैसे हस्तक्षेप कर सकते हैं।

"क्यों नहीं कर सकते, मोहल्ले में सभी सच्चाई जानते हैं।" इन्होंने बहुत समझाया-

"प्रैक्टिकल बनो। भावनाओं में मत बहो। यह संभव नहीं। वह अपना मानसिक संतुलन पूरी तरह खो चुका है। अब उसके लिए कुछ नहीं किया जा सकता।"

बुरा लगता उसका यह हाल देखकर। मन में उसी के ख़याल घुमड़ते। धीरे- धीरे पागलपन की तरफ अग्रसर मोंटू के दिमाग में क्या चलता होगा। कितनी घुटन कितना कष्ट होता होगा उसे, जब उसे मार-मार कर बेदम कर दिया जाता होगा। उठता होगा गुबार उसके भी दिल में जब तड़पता होगा भूख से तीन चार दिनों तक कमरे में बंद। वितृष्णा होती होगी उसे पैसा कौड़ी जायदाद से जिसकी वजह से उसका यह हाल कर दिया गया था। मोंटू पढ़ा-लिखा था, एक खिलाड़ी था, एक समझदार सुलझा हुआ व्यक्ति था। पर उसके दिमाग़, उसकी सोच किस कदर कुचली गई होगी, कि उसका विवेक भी हार गया। क्या कुंठित मन ने न चाहा होगा, कि उसे सबसे निजात मिल जाए, भाड़ में जाए ऐसी दौलत, भाड़ में जाए सब कुछ, बस उसे एक इंसान की ज़िंदगी मिल जाए। अँधेरे कमरों में बंद धिक्करता होगा वह अपने जीवन को। पर शिकायत करता भी तो किससे, जब उसके अपनों ने ही उसका यह हाल कर छोड़ा था। घुलते-घुलते, दर्द झेलते-झेलते, मोंटू भी उससे उबर गया। उसका दर्द अपनी पराकाष्ठा छू चुका था। एक ही जगह पर बार-बार चोट लगने से जैसे वह जगह सुन्न हो जाती है, उसका एहसास खत्म हो जाता हैं, मोंटू का दर्द भी शायद क्षीण हो चुका था।

घर के सामने एक खेल का मैदान है। वहाँ गुलमोहर के कई छायादार पेड़ लगे हैं। मोंटू अब अक्सर वहीं एक गुलमोहर की छाया में बैठा, गुनगुनाता हुआ दिखाई देता। एक दिन गौर किया.... उसके गीतों में खुले आसमानों का, पंछियों की उड़ान का, तृप्ति का, ज़िक्र था। उनमें कई सपने, कई अभिलाषाएँ छिपीं थीं, वह बचपन की बातें छिपीं थीं जो केवल स्मृतियों में शेष थीं। वह स्मृतियाँ जो पूरी तरह खंडित की जा चुकीं थीं, पर जिनमें जान अभी भी बाक़ी थी। बहुत मधुर कंठ था उसका। अक्सर लू चलती दोपहरी में उसके स्वर खिड़कियों से तैरते हुए आते और एक टीस सी उभार देते भीतर। उसे अक्सर मिठाई या फल देने के बहाने बुलाती, और वह मुस्कराता हुआ पहुँच जाता। वही खिचड़ी दाड़ी, उलझे

बाल, फटे मैले कुचैले कपड़े, और चेहरा शांत। अक्सर लगता मन भी कितना अजीब है। कैसे अंजाने लोगों से जुड़ जाता है,जिनसे कुछ लेना-देना नहीं होता। काश कोई उसका अपना होता।

कल बहुत दिनों के बाद मौसम में ठंडक थी। रात में बादलों की गरज के साथ खूब तेज़ बारिश हुई थी। किसी नटखट नार सी, अटखेलियाँ करती, ठंडी बयार चल रही थी। हवा में वही सौंधापन तारी था, जो धधकती धरती की प्यास बुझने पर धरती के पोर-पोर से उठकर नथुनों में पैठ जाता है। छत पर उसी ठंडक का मज़ा ले रही थी जब देखा गुलमोहर के पेड़ के पास भीड़ जमा हैं।

पहले सोचा, होगा कुछ। पर ध्यान वहाँ से हट ही नहीं रहा था। छूटते ही मोंटू का ख़याल आया। अभी कल ही तो आया था, "आंटी जी, थोड़ा सा पानी मिलेगा।" और एक बिस्कुट के पैकेट के साथ जब ठंडे पानी की बोतल उसे पकड़ाई, तो बड़ा खुश हुआ। "आंटी जी इतनी देर से सबसे पानी माँग रहा था, किसी ने नहीं दिया। आपने तो बिस्कुट भी दिया। थैंक्यू आंटी थैंक्यू," कहता हुआ खुशी-खुशी नमस्ते कर चला गया था। कभी-कभी वह इतना समझदार लगता, कि शक होने लगता कि क्या यह वाकई पागल है, या प्रताड़णा से बचने के लिए पागलपन का ढोंग करता है? पर फिर उसका हाल देखकर लगता, नहीं कोई क्यों जान बूझकर अपनी इतनी दुर्गत बनाएगा। उस दिन उससे मुलाकात के बाद, मन को कुछ तृप्ति हुई थी। पर आज दिल हर उठते संशय का फन कुचलकर रह-रहकर उस भीड़ की ओर खिंचा चला जा रहा था। जब नहीं रहा गया तो सड़क चलते मोहल्ले के ही एक परिचित से पूछ ही लिया, "दादा वहाँ भीड़ कैसी है?"

"अरे ऊ अपना मोंटू था न, ओई खोतोम हो गया.....काल राते इतना तेज़ वृष्टि हुआ था न। ओहि में भीग गया...."

वह बोलते जा रहे थे, कानों में एक शोर उठ रहा था, शब्द गडमड हो रहे थे, अर्थ सुझाई नहीं दे रहे थे। ख़बर सुनकर दिमाग़ बिल्कुल सुन्न हो गया था।

आख़िर मोंटू अपने दर्द से निजात पा ही गया। मन नहीं माना। अलमारी से एक सफ़ेद चादर निकाली और उस भीड़ की तरफ बढ़ी। देखा पेड़ के तने पर सिर टिकाये मोंटू चुपचाप सो रहा था। हाँ सो ही तो रहा था। उसकी आँखें अधखुली थीं। आज उनसे वह दहशत ग़ायब थी, न अंगारे ही बरस रहे थे। चेहरे पर एक अजीब सी शांति थी। एक झलक थी उसी जानी पहचानी चमक की, जो बरसों पहले उसके चेहरे पर देखी थी। मैंने वह चादर भीड़ की ओर बढ़ा दी। उसे उस चादर में लपेट दिया गया एक लावारिस की तरह। उसे देखकर महसूस हुआ, जैसे वह अपने हर कष्ट, हर भय से उबर गया था और उस प्रताड़ित शरीर से एक सुंदर आत्मा मुक्त हो गई थी।

'आत्मा' जिसे
शस्त्र काट नहीं सकते,
आग जला नहीं सकती,
जल गला नहीं सकता और
वायु सुखा नहीं सकती।

बस गुलमोहर के तले वह शरीर रह गया था जिसकी किसी ने कभी कदर नहीं की।

मोंटू ने अपने दर्द पर फतह पा ली थी ...! मन तृप्त था, चित्त शांत था और जिह्वा पर वही श्लोक, उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना थी .....

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:

000

कथा-कहानी

पत्ते और डालियाँ

अनीता शर्मा

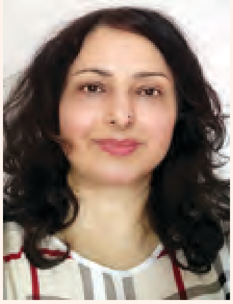

अनीता शर्मा,
शंघाई फुतोंग न्यू एरीआ, यांग काओ नॉर्थ रोड 1188, बिल्डिंग नम्बर 1 अपार्टमेंट 1211, चीन
मोबाइल- +86-15821770829
ईमेल- anitasmexico@hotmail.com

यूनिवर्सिटी में चीनी भाषा सीखने जाती थी। वहीं मेरी तावेई से मुलाक़ात हुई थी। उसने अपनी गर्लफ्रेंड स्नो से भी मिलवाया। वह और उसकी गर्लफ्रेंड स्नो दोनों इंग्लिश सीखने के लिए आए थे। दोनों हॉस्टल में रहते थे। दोनों ही ह-नान प्रांत से थे, स्नो शहर की जन्मी-पली थी, तावेई पास के गाँव का रहने वाला था। दोनों ने ह-नान प्रांत में एक ही यूनिवर्सिटी से इंजीनियरिंग की थी। साथ पढ़ते-पढ़ते दोनों में दोस्ती हुई फिर प्यार हो गया।

मेरी दोनों से खूब छनने लगी थी। हम तीनों शंघाई में नए थे। शंघाई देखने के चाव में हर हफ़्ते अक्सर कहीं न कहीं इकट्ठे घूमने निकल जाते, जम कर मस्ती करते। हमारा लैंग्वेज कोर्स भी साथ ही ख़त्म हुआ। हम तीनों को एक कम्पनी में नौकरी मिली तो जैसे मुँह-माँगी मुराद मिल गई हो। उन दोनों ने ऑफ़िस के पास ही एक कमरा ले लिया रहने के लिए। मेरा घर दूर था लेकिन ऑफ़िस में रोज़ मिलना होता, लंच हम इकट्ठे ही करते थे इसी बीच दोनों के माँ-बाप से भी मिल चुकी थी मैं। दो साल पहले दोनों के माँ-बाप इकट्ठे ही आए थे। मैं मिलने गई थी।

तावेई के माँ-बाप गाँव के रहने वाले सीधे और भले लोग थे पर स्नो के माँ-बाप शहरी थे। दोनों के माँ-बाप को उनके रिश्ते से कोई प्रॉब्लम नहीं थी लेकिन स्नो की माँ बिन कुछ कहे आँखों से ही तावेई और उसके माँ-बाप को उनकी औक़ात बताने से नहीं चूक रही थी। हालाँकि स्नो के पापा हँस-हँस कर उसकी भरपाई करने की कोशिश कर रहे थे लेकिन तावेई के माँ-बाप सकुचाये से रहे उनके सामने।

जल्द ही कंपनी ने नोटिस दे दिया उन दोनों में से एक को दूसरी ब्रांच में नान जिंग शहर जाना होगा या नौकरी छोड़नी होगी; क्योंकि कंपनी प्रेमी जोड़े को इकट्ठा नहीं रहने देती। दोनों एक ही शहर में रहना चाहते थे सो स्नो ने दूसरी कंपनी में जाने का फ़ैसला लिया।

छः-सात महीने बाद तावेई के चेहरे की चमक कम होने लगी, वह खोया-खोया सा रहने लगा। मैंने कई बार पूछा लेकिन वह हर बार फीकी सी हँसी से टाल जाता। मैंने स्नो से पूछा वह

भी बात करने से कतरा रही थी। आपस की बात जान मैंने ज़्यादा कुरेदना ठीक नहीं समझा।

एक दिन तावेई गहरी पीड़ा चेहरे पर समेटे हुए मेरे पास आया और बोला,'स्नो मुझे किसी और के लिए छोड़ गई, कह रही थी उस लड़के के पास घर है, गाड़ी भी है, उसकी तनख़्वाह भी मुझसे कहीं ज़्यादा है।' कहते हुए उसकी आवाज़ भर्रा गई, आँखों में नमी उतर आई, आगे वह बोल नहीं पाया कुछ। सुनकर अवाक् रह गई, मैं कुछ कहती इससे पहले ही वह तीर की तरह निकल गाया। मैं उसकी सीट तक गई, वह छुट्टी लेकर घर जा चुका था। मैं भी छुट्टी के बाद उसके घर चली गई, तावेई दिवार की तरफ़ मुँह करके लेटा हुआ था। उसके कमरे में उसकी माँ भी थी। काफ़ी उदास, परेशान बेटे का दु:ख बाँटने के लिए दौड़ी आई थी पर टूटे दिल का सोग था, कोई कहाँ कम कर सका है इसे ! तावेई की उदासी कम न हुई। उसकी हालत जस की तस रही, थक-हार कर अढ़ाई महीने बाद उसकी माँ वापिस गाँव चली गई।

तावेई बदल सा गया, ऑफ़िस आता चुपचाप काम करता रहता, लंच में भी कुछ ख़ास बात नहीं करता।

एक दिन मैंने उससे बात छेड़ी ताकि मन की बात करके कुछ हल्का हो जाए। मैंने उससे पूछा कि उसने स्नो से कोई बात क्यों नहीं की, कुछ तो पूछा होता कि इतने साल का इतना गहरा प्यार तोड़ताड़ कर ऐसे कैसे किसी दूसरे के साथ जा सकती है। एक बार रोका तो होता उसे।

तावेई का उतरा हुआ चेहरा और क्लांत हो गया, "मैंने उससे कहा मैं तुमसे प्यार करता हूँ।" उसने कहा,"कौन सा प्यार करते हो ? दिखाओ मुझे।" मैं हैरान हो गया,"मैं तुम्हारी परवाह करता हूँ, तुमसे बेहद प्यार करता हूँ पर दिखा कैसे सकता हूँ ? क्या तुम्हें महसूस नहीं होता मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ ? तुम्हारी भावनाओं की कद्र करता हूँ।"

उसने कहा,"नहीं मुझे नहीं दिखता, कहाँ हैं प्यार ? मैं नहीं फ़ील कर सकती हूँ, अरे ! कौन सा प्यार? हाँ, सिर दुखता है तो पास बैठ

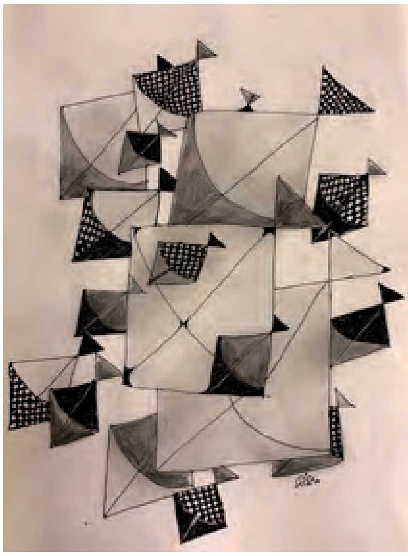

जाते हो, कभी मेरे लिए क़ुल्फ़ी भी लेकर दी है ? और मेरी पसंद का कुछ भी तो नहीं कर पाते हो।"

मैंने कहा कि यह हम दोनों का फ़ैसला था कि शादी से पहले हम दोनों अपना-अपना खर्च अलग ही रखेंगे। दोनों फ़ालतू खर्च भी नहीं करेंगे, पैसे जोड़ घर और गाड़ी ख़रीदेंगे फिर शादी करेंगे।"

उसने कहा,"नहीं, ऐसे हमारी शादी होने में दस पंद्रह साल लग जाएँगे।"

मैंने कहा कि यह भी उसी का फ़ैसला था, मैंने तो प्यार के मारे उसकी सब बात मानी, वरना शादी करके किराए के घर में भी तो रह सकते थे। मैं और कैसे दिखाऊँ प्यार? तो उसने कहा,"तुम नहीं दिखा सकते क्योंकि तुम्हारे पास है ही नहीं कुछ। मेरा मंगेतर मुझे प्यार करता है तो दिखाता भी है। वो मेरे लिए ढेर सारे गिफ़्ट लेके आता है और उसने मेरे लिए अलग से गाड़ी लेकर देने का वादा किया है। वह मुझे अच्छे-अच्छे रेस्टोरेंट में खाना खिलाने ले जाता है। तुम क्या करते हो मेरे लिए ? वह जैसे प्यार का इज़हार करता है तुमने आज तक कभी सोचा भी नहीं।"

"अब मैं क्या करता, मेरे पास कोई चारा नहीं था। क्योंकि जो प्यार वह चाहती थी, जिस तरह के दिखावे के लिए कहती थी वो प्यार मेरे पास नहीं था। कहाँ से लाऊँ मैं इतना पैसा ? उसे पहले से ही मेरी स्थिति पता थी, मैंने तो कोई धोखा नहीं दिया।" इसके आगे वह कुछ ना बोल पाया।

पाँच-एक महीने बाद ऑफ़िस में ही काम करने वाली मिस यू का झुकाव ज़रूर हो गया था तावेई की ओर। उसे पता लग गया था कि वह अब सिंगल है। लेकिन तावेई को किसी चीज़ में दिलचस्पी न रही थी। वह घुट सा गया था अपने ग़म में। अपने आसपास चुप्पी का एक खोल सा बना लिया था उसने। मुझे उसका दोस्त जान मिस यू मुझसे दोस्ती बढ़ाकर उस तक पहुँचने की कोशिश करने लगी।

मुझे भी वह एक भली व नेक लड़की लगती थी। मैंने तावेई से मिस यू की बात छेड़ी तो उसने कहा,"एक दिल में दो को कैसे बिठा लूँ ? वह साथ तो छोड़ गई पर दिल से नहीं निकलती।" कहकर वह उदास हो जाता। मैंने मिस यू को थोड़ा धीरज रखने की सलाह दी। ऐसे ही डेढ़-दो साल बीत गए तावेई न पिघला तो मिस यू का धीरज भी चूकने लगा। वह भी दूसरी राह चलने का मन बनाने लगी।

मिड-ऑटम फ़ेस्टिवल की छुट्टियों से पहले मिस यू ने मुझे बताया वह इस बार अपने घर जा रही है। मामा-पापा शायद किसी से मिलवाना चाहते हैं उसे। उसने 'किसी' शब्द पर ख़ासा ज़ोर लगाया। यह सुन मुझे थोड़ा धक्का लगा पर अब क्या हो सकता था। फिर मैंने तावेई की माँ को फ़ोन कर उन्हें समझाया कि वह किसी तरह से तावेई को उनके पास गाँव जाकर मिड-ऑटम फ़ेस्टिवल मनाने के लिए राज़ी कर लें। साथ ही मैंने मिस यू के बारे में भी ज़िक्र किया।

क्योंकि तावेई दो साल से गाँव नहीं गया था। माँ-पापा से भी नहीं मिला था सो माँ और दादी के बार-बार कहने पर वह गाँव चला गया।

तावेई जब गाँव से वापिस आया तो उसका चेहरा दमक रहा था, आँखों में एक अलग सी चमक उतर आई थी। आते ही उसने मुझे माँ के हाथ के बनाए कस्टर्ड मून केक दिए और मिस यू की सीट की ओर मुड़ गया। मिस यू को फ़ेस्टिवल की बधाई देते हुए उसने उसको भी मून केक पकड़ाये तो उसकी आवाज़ में उमंग भरी हुई थी।

मैंने उसे मज़ाक़ में छेड़ा कि गाँव की

ताज़ी हवा का असर हुआ है तो उसने मेरे पास आकर मुस्कराते हुए धीरे से कहा," अबकी बार मैं पतझड़ जी कर आया हूँ।" मेरी प्रश्नभरी आँखों को देख कहने लगा," नहीं समझी, आ .....! दादी ने पतझड़ का सारा मतलब समझा दिया।"

"अजीब है ! पतझड़ का मतलब तो शायद हर किसी मालूम होगा।" मैंने हैरानी से कहा।

"पता होता है फिर भी शायद हम सब भूल ही तो जाते हैं," बात करते-करते वह कहीं खो सा गया," देखो हम गाँव में प्रकृति के इतना क़रीब रहे। मैं वहीं पला, वहीं बड़ा हुआ, घर के पास अपना बगीचा था। उस बगीचे में कई तरह के पेड़ पौधे लगे हुए थे।" कहते-कहते वह थोड़ा भावुक भी हो गया,"और दो पेड़ बिलकुल मेरी उम्र के, मेरे जन्म पर उसी दिन मेरी दादी ने मेरे लिए लगाए थे। उनके साथ मेरा रिश्ता भाई-भाई जैसा ही था। इतने साल उनके साथ उनके साथ बिताने पर भी मैं उनसे कुछ न सीख सका। इस बार गाँव गया तो हमेशा की तरह घर में सबसे मिलने के बाद बगीचे में उनसे मिलने गया, पीछे-पीछे दादी चली आई। मुझे उनके साथ बातें करते देख दादी कहने लगी," अपने भाइयों से कुछ सीख भी ले लो।"

मैं आश्चर्य से भर गया,"अब इनसे क्या पूछूँ अपने दर्द का इलाज ?"

"पूछो तो सही।"

"अब यह क्या मज़ाक़ है दादी ?"

"अपने दु:खी बच्चे के साथ मैं मज़ाक़ कर सकती हूँ क्या ? इनसे पूछो जब पतझड़ में इनके सारे पत्ते झड़ जाते हैं, बिलकुल ठूँठ रह जाते हैं ये, तो क्या यह उनके दु:ख में रोते-रोते जीना छोड़ देते हैं या शान्ति से फिर से पत्ते उगने का इंतज़ार करते हैं ?" कहकर दादी ने अपनी नज़रें मुझ पर गढ़ा दीं जैसे वह देखना चाहती हों कि उनके बताए प्रश्नों का जवाब मुझे मिला या नहीं।

"फिर ?" मेरी उत्सुकता बढ़ गई।

"काफ़ी देर मैं खोया सा चुपचाप वहीं खड़ा रहा, जब अपनी चेतना में वापिस लौटा तो देखा दादी मुझे अपने प्रिय भाइयों के साथ

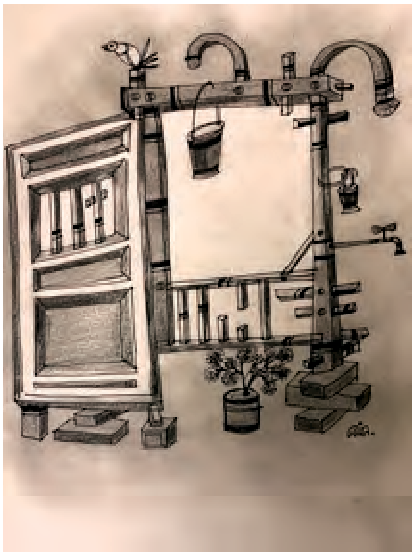

समय बिताने के लिए अकेला छोड़ वहाँ से जा चुकी थीं। मैंने बगीचे में दो-तीन घंटे बिताये जब तक मन में कुछ तय नहीं कर लिया तब तक घर वापिस न गया।"

"फिर मिला उत्तर?" मैंने फिर पूछा।

उसकी आँखों में फिर चमक उभर आई,"नहीं मिलता तो मैं मुँह लटकाए न आता वापिस ! इस बार पुराने पत्ते सारे झाड़ आया हूँ, बस अब धीरज से इंतज़ार करूँगा।" कहते हुए तावेई ने कनखियों से मिस यू को देखा, वह भी दिखाने के लिए काम कर रही थी लेकिन उसके कान इधर ही लगे हुए थे।

"आहा! तो यह बात है।"

"यही बात है, बिलकुल। जब बगीचे से घर वापिस आकर मैंने यही बात कही तो माँ और दादी के चेहरे खिल उठे, माँ-पापा को बताने खेतों की ओर दौड़ गई। मुझे ऐसे भी नहीं लगा कि कोई बड़ी बात हो गई है।"

इसी बीच मिस यू अपने डेस्क से उठकर पास आकर बोली," बात इतनी छोटी भी नहीं, है न मिस शम्मा(शर्मा) ?"

मैं मन ही मन मुस्कुरा रही थी, बात दोनों के लिए ही बड़ी थी शायद।

मुझे एक हफ़्ते की छुट्टी लेनी पड़ी, हफ़्ते बाद ऑफ़िस में तावेई को चहकते हुए देखा तो मन खुश हो गया। लंच- टाइम में कैंटीन गई, वहाँ तावेई और मिस यू दोनों इकट्ठे बैठे हँस-हँस बातें कर रहे थे, मैं उन्हें हेलो बोल आगे बढ़ गई, पास से गुज़रते हुए मैंने देखा मिस यू के गाल लाल हो रहे थे।

उसके बाद तावेई खुश रहने लगा था लेकिन फिर एक दिन कंपनी की तरफ़ से दोनों को नोटिस मिल गया। दोनों के प्यार की ख़बर ऊपर तक हो चुकी थी। कोई चारा न था, एक को जाना ही होगा, कंपनी फ़ैसला सुना चुकी थी। दोनों ने आपस में मिलकर फ़ैसला लिया कि तावेई की परमोशन इसी साल होने वाली थी सो तावेई इसी कंपनी में रहेगा। मिस यू किसी दूसरी कंपनी में चली गई।

तावेई पर फिर मुर्दनी सी छा गई। मैंने उसे समझाया सब एक जैसे नहीं होते, डरने की कोई बात नहीं। पर वह लगभग रोज़ ही मुझसे एकबार ज़रूर कहता," तुम ठीक कहती हो पर मैं डरता हूँ, बहुत डरता हूँ। अपने भाइयों की तरह पेड़ तो नहीं हूँ जो हर बार पत्ते झड़ने पर आगे बढ़ता रहूँगा। वह एक दिन भी मिलने नहीं आ पाती तो दिल बैठने लगता है।"

चार-साढ़े चार महीने बीते होंगे तावेई फिर उदास सा रहने लगा। पूछने पर बोला," शायद उसे भी कोई मिल गया लगता है, दस दिन हो गए मिलने नहीं आई, कहती है माँ बीमार है सो छुट्टी लेकर हाँग चोउ गई है अपनी माँ के पास।"

मैंने कहा सही भी तो हो सकता है तो बोला, "माँ की बीमारी में क्या बात करने का भी टाइम नहीं मिलता।"

"हो सकता है ज़्यादा बीमार हो।"

"नहीं, उसने बताया माँ का ऐक्सिडेंट हुआ है, कुछ मामूली चोटें आई हैं।"

मुझे लगा अब तो यह लड़का गया समझो, कैसे झेल पाएगा फिर से।"

मैंने उसे सुझाया कि क्यों न हम दोनों इतवार को मिस यू की माँ को देखने हाँग चोउ चलें तो उसे जैसे मुँह माँगी मुराद मिल गई हो।

हम हाँग चोउ में मिस यू के घर पहुँचे इससे पहले रास्ते में तावेई ने बीस बार कहा होगा," अगर उसकी माँ बीमार हुई तो ठीक, नहीं तो मैं बीमार होने वाला हूँ।"

उसे तो भरोसा दिलाती रही लेकिन मन में मैं भी मन्नतें माँग रही थी कि यू की माँ बीमार ही हो। यू के घर पहुँचे। बेल बजाई तो दरवाज़ा खुला, सामने यू की माँ खड़ी मुस्कुरा रही थी। हम दोनों को ही जैसे लकवा मार गया। अंदर

कमरे से यू की आवाज़ आ रही थी और एक मर्दाना हँसी की आवाज़ सुनाई दे रही थी। शायद यू के पापा होंगे मैंने सोचा लेकिन तावेई को यक़ीन हो गया कि यह कोई दूसरा है जिसके कारण यू ने उससे झूठ बोला। उसकी माँ ने और मैंने तावेई को ज़ोर देकर बैठने को कहा तो मन मारकर सोफ़े पर बैठ गया। लेकिन उसका रंग स्याह पड़ चुका था।

थोड़ी देर बाद यू बाहर आई, बीमार थी अपने पापा का सहारा लेकर चल पा रही थी। आकर सोफ़े पर बैठी तो देखा उसका रंग पीला पड़ गया था। उसके पापा ने माफ़ी माँगते हुए कहा,"पीलिया हो गया इसे, पेट में दर्द उठा तो डॉक्टर के पास गई, टेस्ट हुए तो पता चला कि पीलिया काफ़ी बढ़ गया है। डॉक्टर हमें जानता था, उसने मुझे फ़ोन कर दिया। हम दोनों टैक्सी करके इसे शंघाई से यहाँ अपने पास ले आए। तावेई, हमने तुम्हें बताने के लिए इससे कई बार कहा; लेकिन यह नहीं मानी, कहने लगी तावेई का दिल छोटा है, वह घबराएगा, छुट्टी लेकर मेरे साथ घर बैठ जाएगा। उसकी परमोशन होने वाली है। उसे काम पर ध्यान देना चाहिए।"

सच में यू की हालत देख तावेई रुआँसा हो गया था। मुश्किल से कंट्रोल कर रहा था अपने आपको। वह यू के साथ रहना चाहता था; लेकिन उन सब ने काफ़ी समझाकर उसे वापिस भेज दिया। एक तरफ़ यू के लिए चिंता कर रहा था तो दूसरी तरफ़ ख़ुशी थी कि यू को कोई नहीं छीन रहा था उससे।

यू बिलकुल ठीक हो गई। तावेई की परमोशन भी हो गई। तावेई छुट्टी पर था, उसे बुख़ार था। तीन दिन नहीं आया तो मैंने उसे फ़ोन किया, एक सेकंड में ही यू ने फ़ोन उठा लिया। उसने बताया तावेई सो रहा है, वह ठीक है पर थोड़ा कमज़ोर लग रहा है सो वह उसे दो-तीन दिन और ऑफ़िस नहीं आने देगी।"

मैंने कहा,"ठीक है तो आ जाए, घर में अकेला बोर ही होगा।"

"मैंने भी छुट्टी ले रखी है, बीमार को अकेले कैसे छोड़ दूँ।"

मुझे झट से याद आ गया जब तावेई स्नो

के साथ रहता था, एक बार इसका ऐक्सिडेंट हो गया था, टांग का फ्रैक्चर हो गया था। स्नो ने एक भी छुट्टी नहीं ली थी। मैंने पूछा तो उसने बताया था कि उसने तावेई के घर फ़ोन कर दिया है, उसके माँ-बाप पहुँच जाएँगे शाम तक। अब नई-नई नौकरी में छुट्टी लूँगी तो इमेज ख़राब होती है। यू की आवाज़ सुन फिर से वर्तमान में लौटी,"मैं अभी तावेई के रूम में ही रहूँगी इस हफ़्ते, लो, तावेई भी उठ गया है, लीजिए उससे बात कीजिए।"

तावेई की कमज़ोर लेकिन प्रफुल्लित आवाज़ सुनकर बहुत अच्छा लगा। मैंने उसे छेड़ा," तावेई, अब तो डर नहीं लग रहा ना ?"

आह! फंगियो (दोस्त) आपको भी डरने की ज़रूरत नहीं अब तो। एक और बात भी सिखाई है मेरे पेड़ भाइयों ने, बताऊँ ?"

"जल्दी से बताओ"

"यही कि झड़ते सिर्फ़ पत्ते हैं, डालियाँ नहीं झड़ती कभी।"

"तावेई, तुम आशिक़ से दार्शनिक बनते जा रहे हो।"

सुनकर तावेई ज़ोर से हँस पड़ा, साथ ही पीछे से यू की खनक़दार हँसी भी सुनाई दी।

"अच्छा डालीयो, अब रखती हूँ।" सुन कर फिर से दोनों ज़ोर से हँस पड़े। मुझे लगा अब बहार आई है और डालियाँ फूलों से भर गई हैं। यह सोच खुद ही हँस दी अपने आप पर या शायद फूलों से लदी डालियों को देख मन यूँ ही उल्लसित हो उठा था।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कथा-कहानी

नाईन्टी नाईन रोज़ेस

ज्योत्सना सिंह

स्थापना दिवस का भव्य जलसा आर.के. इंटर कॉलेज किसी दुल्हन सा सजा हुआ था। सभी नए-पुराने छात्र-छात्राओं का जमघट लगा हुआ था। कॉलेज ग्राउंड में खड़े लोग पुराने दिनों को याद करके ठहाके लगा रहे थे। कोई किसी की पुरानी हरकत को याद करता तो कोई किसी के वर्तमान आकार-प्रकार को लेकर टिप्पणी कर रहा था। वातावरण में अलग ही तरह का उत्साह समाया हुआ था। तभी अनाउन्समेंट हुआ और हर वर्ष के क्रमानुसार भूतपूर्व छात्र-छात्राओं के बैठने के इंतज़ाम के बारे में अवगत कराया गया। मैं सन् 1995 वाली पंक्ति की तरफ बढ़ा ही था कि तभी किसी ने मेरा नाम पुकारा- 'फ़िलिप!' मैंने पलट कर देखा, पहचाना हुआ सा चेहरा था। पर कौन है! यह मुझे याद नहीं आ रहा था तभी उसने कहा- 'फ़िलिप, मैं बिसारिया।' एकदम से मुझे लंबे बालों वाला दुबला-पतला सा वह लड़का याद हो आया जिसकी हिन्दी जितनी बेजोड़ थी, अंग्रेज़ी उतनी ही टूटी-फूटी थी।

मैंने ख़ुशी से हाथ बढ़ा दिया- "यार तू तो पहचान में ही नहीं आ रहा है एकदम बदल गया है। यक़ीन ही नहीं हो रहा कि वह सींकिया पहलवान सचमुच का पहलवान हो गया।"

वह हँसा और बोला- "आ जा, अपना पूरा ग्रुप आया है। वह देख सब बैठे हैं।" उस रो में पूरा ट्वेल्थ-बी क्लास बैठा हुआ था। साहिल, रिद्धि-सिद्धी, लाला, अलका, सुनील और राजन तिवारी भी। ये वे लोग थे जिन्हें मैंने एक बार में ही पहचान लिया। सब थोड़े से बदलाव के साथ उम्र की सीढ़ियाँ चढ़कर एक पड़ाव पर आकर खड़े थे। मैंने आगे बढ़कर राजन से हाथ मिलाया तो उसने मुझे गले से लगा लिया और बोला-" कहाँ छुप गया था यार तू।"

मैंने उसके आलिंगन की गर्मजोशी को महसूस करते हुए कहा- "तुम से छिपकर कहाँ जाऊँगा दोस्त! आजकल ऑस्ट्रेलिया में हूँ, फूलों का बिज़नेस है। तुम बताओ कैसे हो और सब कैसे हैं? आई मीन अम्मा कैसी हैं?"

राजन ने कहा- "सब ठीक ही है। पिछले साल अम्मा नहीं रही।" मैंने दु:ख प्रकट किया-

ज्योत्सना सिंह
अंब्रोसिया, बी-1701, ओमेक्स रेसिडेंसी 2,
सेक्टर -7, गोमती नगर एक्सटेंशन,
लखनऊ, उत्तरप्रदेश 226010
ईमेल- singhjyotsana1968@gmail.com

"ओह! दु:खद!" थोड़ा सा रुकते हुए मैंने फिर पूछा- "जॉब कौन सी शुरू की?" उसने अपना विज़िटिंग कार्ड निकालकर मेरे हाथ में थमा दिया। 'आइ.पी.एस' पढ़ते ही मैंने ख़ुशी से कहा- "अरे वाह! तुमने तो कमाल कर दिया।"

इसी बीच में प्रोग्राम शुरू हो गए पुराने न जाने कितने शिक्षकों और प्रिंसिपल का एक वीडियो सामने लगी स्क्रीन पर प्ले होने लगा। बीच-बीच में तेज़ आवाज़ में लोग अपने पसंदीदा टीचर की तस्वीर देखकर ख़ुशी ज़ाहिर कर रहे थे। इस सब के बीच में बैठ तो गया था राजन तिवारी के साथ पर मेरी निगाहें अभी भी इंदिरा तिवारी को ही तलाश रही थीं। चाहकर भी मैंने राजन से उसके बारे में नहीं पूछा, जबकि मैं यहाँ आया ही सिर्फ और सिर्फ एक बार उसे देखने के लिए था। सोचा, मौक़ा मिलते ही रिद्धि-सिद्धि से पूछता हूँ। रिद्धि-सिद्धि जुड़वाँ बहनें थीं और इंदिरा की बेस्ट फ्रेंडस थीं। पूछता कैसे वह दोनों ही मुझसे काफी दूरी पर बैठी हुईं थीं। इस वक्त तक प्रोग्राम भी बड़े ज़ोर-शोर से शुरू हो गया था।

मेरा मन जैसे ही प्रोग्राम में रमता वैसे ही मुझे कभी पीली तो कभी सफ़ेद टी शर्ट में इंदिरा नज़र आने लगती। इन्हीं यादों के साथ मैं जा पहुँचा स्कूल के पीछे लगे इमली के पेड़ तक, जहाँ काले रिबन से कसकर गुँथी हुई दो चोटी में एक लड़की खड़ी थी। यह इंदिरा थी। रिद्धि-सिद्धि में एक नीली टी शर्ट और एक लाल टी शर्ट में थी। इन दोनों के ही बाल कटे हुए थे और बालों पर काला हेयर बैंड लगा हुआ था। यह टी शर्ट स्कूल हाउस के रंग के अनुसार होती थीं। जो हाउस वाले दिन पहननी होती थीं। बाक़ी दिन सफ़ेद टी शर्ट थी। उस दिन स्कूल में मेरा पहला दिन था। मैं कोलकाता से हाईस्कूल करके आया था। मेरे डैड का यहाँ ट्रांसफर हुआ था। वह भी मिड सेशन में। आर्मी में होने की वजह से मुझे एडमिशन मिल गया था।

मैं चुपचाप खड़ा था कि उन एक सी दिखने वाली दोनों लड़कियों में से एक ने कहा- "ए लड़के यहाँ क्या कर रहा है?"

मैंने थोड़ा अटकते हुए कहा- " तुमको क्यों बताएँ?"

तब उस दो चोटी वाली लड़की ने मेरे करीब आकर कहा- "तो चल फिर मुझे बता!"

मैं कुछ कहता इससे पहले ही वह फिर बोली- " नया आया है क्या?"

खुद को थोड़ा सा अकड़ाकर कहा- " हाँ तो?" अब उन दोनों एक सी दिखने वाली यानी कि रिद्धि-सिद्धि ने एक साथ कहा था- "तभी तो।"

मैंने कहा- "क्या तभी तो?" इस सब के बीच इंदिरा ने मेरा हाथ कसकर मोड़ दिया और बोली- "यह हमारी स्पेशल जगह है। यहाँ मत आया करो!" अपना हाथ छुड़ाकर मैं वहाँ से उन सबको "बैड गर्ल" बोलता हुआ चला आया था। उसी दिन क्लास में मेरा परिचय प्रिंसिपल सर ने करवाया। यह वही क्लास थी जिसमें इंदिरा और रिद्धि-सिद्धि के साथ ही आज मिले ये सारे दोस्त भी थे। साथ ही राजन तिवारी भी था। वह इंदिरा का भाई है। यह बात मुझे तब पता चली जब मैंने उसी से इंदिरा और उन दोनों जुड़वाँ बहनों की बुराई की। उसी वक्त बिसारिया ने मुझसे कहा था- "क्यों अपनी हड्डियाँ तुड़वाने पर आमदा है यार! इंदिरा बड़ी लाड़ली बहन है तिवारी की। राजन स्कूल का ही-मैन भी है भाई, यह बात भी ध्यान रखना।"

मैं उस वक्त चुप हो गया और तब से बिसारिया मेरा दोस्त बन गया था। पहले दिन से ही मैं राजन को पसंद नहीं आया था। क्रिश्चियन होने की वजह से उसे लगता था कि मैं विदेशी हूँ। हफ़्ते भर के अंदर ही मेरी सबसे दोस्ती हो गई यहाँ तक की रिद्धि-सिद्धि से भी, पर इंदिरा और राजन तिवारी ये दोनों मुझसे बात करना पसंद नहीं करते थे। मुझे इंदिरा बहुत अच्छी लगने लगी थी। खास करके उसका बेफ़िक्री से बोलने का अंदाज़ और उसकी मोटी-मोटी चोटियाँ। मैं उससे दोस्ती करने के लिए कुछ भी कर सकता था। लेकिन वह थी कि मुझसे बात तक करना पसंद नहीं करती थी। मैं अपने ख़यालों में डूबा हुआ था कि बिसारिया का नाम पुकारा गया और वह मेरे काँधे को हिलाते हुए बोला- "जगह दे भाई! मुझे बुलाया जा रहा है। मैंने गाने के लिए अपना नाम दिया है।"

मैंने साइड देते हुए कहा- "अरे वाह! तेरा यह हुनर अभी ज़िंदा है।" फिर बिसारिया ने गाना शुरू किया- "एहसान मेरे दिल पर तुम्हारा है दोस्तों, ये दिल तुम्हारे प्यार का मारा है दोस्तों।" पूरा ट्वेल्थ-बी झूम उठा। मुझे फिर इंदिरा याद आने लगी। वह जब-तब बिसारिया से गाने की फ़रमाइश कर देती और हम सब उसके साथ ही झूम उठते थे।

अब स्क्रीन पर हमारे फुटबाल कोच सर की तस्वीर आई उन्हें देखते ही मैं उन दिनों के प्ले ग्राउंड के उस कोने में जा पहुँचा जहाँ राजन दर्द से कराह रहा था। येलो हाउस के सब बच्चे परेशान थे। कल होने वाले फुटबाल मैच बिना तिवारी के जीतना नामुमकिन था। कोच सर ने मुझे और बिसारिया से राजन को सिक रूम तक ले जाने को कहा हम उसे सहारा देकर ले जा रहे थे तभी मैंने कहा- "राजन तुम कहो तो मैं टीम लीड करता हूँ।" राजन ने दर्द और क्रोध से मुझे देखते हुए कहा- "यह फ़ाइनल मैच है। तुम्हारे जैसे नौसिखिये के लिए नहीं।"

मैं बोला- "नया स्कूल में हूँ प्लेयर पुराना हूँ। आख़िर मैं बंगाल से हूँ।" फिर कोई विकल्प न देखकर उसने मुझ पर भरोसा कर लिया। दूसरे दिन मैंने अपना बेस्ट परफॉर्मेंस दिया और ग्रीन हाउस को हराते हुए येलो हाउस जीत गया। उसी दिन से मेरी और राजन की दोस्ती शुरू हुई थी। जीत के बाद राजन और इंदिरा को उनके घर तक छोड़ने मैं पापा की जोंगा जीप में गया। क्योंकि राजन के पाँव की मोच अभी तक ठीक नहीं हुई थी इसलिए उसे सहारा देकर घर के अंदर छोड़कर मैं जैसे ही वापस जाने को हुआ एक प्यार भरी आवाज़ ने मुझे रोका- " रुको बेटा, ऐसे ही चले जाओगे क्या? बैठो,चाय पीकर जाना।"

उनकी आवाज़ ने मुझे एक बार भी मना करने से रोक दिया और मैं बैठ गया। इंदिरा तुरंत बोली- "अरे, तुम्हारी अम्मा ने यह नहीं सिखाया तुम्हें कि एक बार किसी को मना भी करते हैं। किसी ने पूछा और तुम बैठ गए।"

मन दु:खी हो गया और यह कहते हुए मैं उठ खड़ा हुआ- "माई मम्मा इज़ इन हेवेन।" जैसे ही चलने को हुआ राजन ने हाथ पकड़ लिया और कहा- "थोड़ी शरारती है, पर बहुत अच्छी है। बैठो तुम अम्मा के हाथ की चाय पीकर ही जाना।" अम्मा भी बोली -"हाँ बेटा रुको, यह तो है ही शैतान की नानी।" मैं रुक गया इंदिरा चाय की ट्रे लेकर आई और कप मुझे देते हुए बोली- "आई एम सॉरी।" कप पकड़ कर पहले मैं चुप ही रहा। दो घूँट पीने लेने के बाद मैं बोला- "अम्मा आपकी बनाई चाय बहुत अच्छी है। हमारे यहाँ तो टीपॉट वाली बनती है। मुझे तो यह वाली बहुत अच्छी लगी।"

अम्मा ने फिर आने को कहते हुए बहुत सारा आशीर्वाद दिया। उनका सारा प्यार बटोर कर मैं वापस चला आया। उस दिन से राजन से मेरी दोस्ती के तार दिन ब दिन गहरे होते चले गए। साथ ही साथ मैं और इंदिरा एक दूसरे के होने लगे। कच्ची उम्र में प्रेम का अंकुर हमारे भीतर फूटने लगा था।

उसे चुपके से छू लेना, या उसके बगल में खड़े होकर उसे महसूस करना सब मुझे बड़ा सुखद एहसास देते थे। वह भी मेरी हर एक बात पर खुश होती। मेरे अच्छे नंबर, राजन को इम्तिहान में मेरा हेल्प करना सब उसे अच्छा लगता। मैं क्लास की किसी लड़की से बात कर लेता तो वह नाराज़ हो जाती। उसे मनाने के लिए मैं उसके घर तक चला जाता।

इंदिरा की ऐसी ही एक नाराज़गी जब उसी दिन दूर न हुई तब दूसरे दिन मैं उसके लिए एक गुलाब लेकर गया था। जैसे ही मैंने उसे दिया उसने ख़ुशी प्रकट की -"अरे, तुमको कैसे पता कि मुझे पिंक रोज़ ही पसंद हैं!" मैं उसकी गुलाबी सी मुस्कान में खो गया। अब मैंने नियम बना लिया अपने लॉन से रोज़ उसके लिए पिंक रोज़ ले जाने लगा।

राजन और मेरी दोस्ती अब तक बहुत अच्छी हो गई थी। अब वह मुझे विदेशी नहीं कहता था। पढ़ने से ज़्यादा राजन का मन नेतागिरी में लगता था। शहर के एक बड़े संगठन के जुलूस और प्रदर्शन में उसकी भागीदारी रहती थी। वह कहता भी था कि डिग्री कॉलेज जा कर जब वह एलेक्शन लड़ेगा तब मुझे पापा की जीप से उसकी कन्वेसिंग करने चलना पड़ेगा। हम सब वार्षिक परीक्षा की तैयारी में लगे हुए थे। इम्तिहान की तारीख़ भी आ गई थी। मुझे वह शाम आज भी याद है। इंदिरा गुलाबी और सफ़ेद फूलों वाली स्कर्ट पहनी हुए बहुत खूबसूरत लग रही थी। मैं अम्मा से मिलने उसके घर गया था। हम सब बैठे चाय पी रहे थे कि राजन ने कहा था उसे भारतीय संस्कृति के संरक्षण सम्मेलन में जाना है। चाहूँ तो मैं भी उसके साथ चल सकता हूँ। मैंने यह कहते हुए मना कर दिया- "डैड ने मुझे जल्दी बुलाया है। वह मुझे पढ़ाई में मदद करेंगे।" इंदिरा मुझे देखकर मुस्करा दी।

अक्सर ऐसा होता था। हम एक दूसरे से आँखों-आँखों में ही बातें कर लेते थे। राजन के जाते ही अम्मा भी रसोई में चली गईं। अब हम दोनों ही कमरे में थे। वह मेरे पास वाली कुर्सी पर आकर बैठ गई। उसकी इस नज़दीकी से मेरी नसों में एक सनसनी दौड़ गई। मेरे ऊपर लगभग पूरी तरह से झुकते हुए उसने मेरे सीने पर हाथ रख दिया और बोली-

"फ़िलिप, क्या तुम्हें यहाँ मीठा सा दर्द रहता है?"

मैं जैसे उसमें खो -सा रहा था, मैंने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा-"हाँ!"

मुझ पर थोड़ा-सा और झुकते हुए उसने मेरा हाथ उठा कर अपने वक्ष पर रखते हुए कहा- "मुझे भी।"

मैं पसीने-पसीने हो रहा था और घबराकर उससे दूर होते हुए बोला- "तुम्हारी स्कर्ट के फूल बहुत सुंदर हैं।"

कुछ उखड़ते हुए वह बोली- "पता है, पर मुझे वे फूल पसंद हैं जो तुम मुझे देते हो। जानते हो अब तक मेरे पास तुम्हारे दिए नाईन्टी नाईन पिंक रोज़ हो गए हैं। वैसे मैं तुम्हें कल बताती पर कल वेलेंटाइन डे है और कल मुझे तुमसे लाल गुलाब चाहिए।"

मैंने ख़ुशी ज़ाहिर की "पक्का एक पिंक और एक रेड रोज़ कल मैं तुम्हें दूँगा।"

उसने फिर अकड़ते हुए कहा-"और आई लव यू कौन बोलेगा?"

शर्माते हुए मैंने कहा-" मैं और कौन?" मुझे बुद्धू हो बोलते हुए वह हँस दी थी।

उस दिन स्कूल में बहुत सी छुपी हुई प्रेम कहानियाँ तोहफ़ों और फूलों के बीच में छुप-छुप कर मुस्करा रही थी। मैं भी इंदिरा के लिए दोनों गुलाब अपने टी शर्ट के भीतर छुपाए हुए था। एटेंडेंस के बाद ही तीसरे पीरियड में इमली के पेड़ के नीचे मिलने का वादा कॉपी के पीछे पन्ने पर लिखकर मैंने उसे दूर से ही पढ़ा दिया। तीसरे घंटे के साथ ही हम पेड़ के नीचे खड़े एक दूसरे को प्रेम की बधाई दे रहे थे।

मैंने लाल गुलाब उसकी ओर बढ़ाया और 'आई लव यू इंदू' बोलना ही चाहता था कि मुझे कुछ नेता टाइप लड़कों ने पीछे से खींच लिया लिया और एक झन्नाटेदार थप्पड़ ने मेरे कानों के परदे फाड़ दिए। तेज़ आवाज़ में मुझे बस यह सुनाई दिया- "अपनी धरती पर से विदेशी संस्कृति को हम जड़ से उखाड़ फेंकेगे।" मुझे नहीं पता इंदिरा कहाँ गई।

तभी राजन ने मुझे अपनी तरफ़ खींचते हुए कहा- "निकल जा यहाँ से, तेरे किए एहसान का बदला चुका रहा हूँ।" मैं बहुत डर गया मुझे नहीं पता कि उसके बाद इंदिरा का क्या हुआ? अचानक मुझे लगा मेरे कानों पर फिर किसी ने ज़ोर का थप्पड़ लगाया और मैं वर्तमान में आ गया।

स्टेज से वर्तमान प्रिंसिपल का नाम ' इंदिरा तिवारी' पुकारा गया। मेरी नसों में उस दिन जैसी झुरझुरी दौड़ गई। इस वक्त वह स्टेज पर माइक पकड़े आर.के. इंटर कॉलेज में आए हुए लोगों को संबोधित कर रही थी। उसकी स्पीच के साथ ही ख़त्म हुआ स्थापना दिवस समारोह।

सब डिनर के लिए जा रहे थे कि तभी राजन ने मेरा हाथ पकड़कर कहा- "इंदिरा ने शादी न करने का प्रण लिया है। मुझे लगता है वह आज भी तुम्हारा इंतज़ार कर रही है। क्या तुम भी?"

कोट की जेब में रखे पिंक गुलाब को थोड़ा और प्यार से पकड़े हुए मैं इंदिरा की तरफ़ तेज़ कदमों से बढ़ चला।

000

पिल्लू

सुनीता पाठक

सुनीता पाठक
ई 16 कुशल नगर गाँधी
नगर,ग्वालियर,मध्य प्रदेश
मोबाइल- 94257 75207
ईमेल- sunitapathak24@gmail.com

"मम्मी, अपने घर के बरामदे में एक छोटा सा पिल्लू आया है ...बहुत ही प्यारा है वह।" मेरी बेटी ने मुझे फ़ोन पर बताया था।

"अरे... वह अंदर कैसे आ गया? तुमने ज़रूर गेट खुला छोड़ दिया होगा। अब देखो कहीं दरवाज़ा तो खुला हुआ नहीं है, वरना वह घर के अंदर आ जाएगा और देखो, दरवाज़े से बाहर निकलकर, प्यार में उसको सहलाने... हाथ लगाने की ज़रूरत नहीं है... वह और उसकी माँ तुम्हें काट भी सकती है,समझी!"-मैंने फ़ोन पर चिंता व्यक्त की।

"नहीं मम्मी, वह तो बहुत छोटा सा पिल्लू है, मैंने खिड़की से देखा कि वह गेट के नीचे से झुक कर अंदर आया है।"

"अच्छा...तो मेरे आने तक तुम दरवाज़ा मत खोलना... बस इस बात का ध्यान रखो कि वह कहीं दब न जाए और कहीं छुप कर, फँसकर ना बैठ जाए।"

इस बातचीत के बाद बिटिया खिड़की से ही पिल्लू को देखने में इतनी मसरूफ़ हो गई कि मुझसे फ़ोन पर कोई बातचीत नहीं की। शाम को जब मैं घर आई, तो जूही मेरा बेसब्री से इंतज़ार करती हुई मिली कि वह मुझे प्यारे से पिल्लू से मिलाएगी और पिल्लू को नज़दीक से देख पाएगी। गेट के बाहर पिल्लू की माँ इत्मिनान से आँखें मूँदे हुए लेटी हुई थी। जूही ने बताया कि पिल्लू, जब अपने आप गेट के नीचे से, सरक कर अंदर नहीं आ पा रहा था ...तो उसकी माँ ने मुँह से उसको धक्का देकर अंदर धकेला था और अब पिल्लू की माँ को यह इत्मीनान था कि सड़क पर आते-जाते वाहनों और गली के अन्य कुत्तों के लड़ा- झगड़े से उसका नन्हा पिल्लू सुरक्षित हो गया है।

जूही, पिल्लू को देखकर बहुत खुश थी, इसलिए पिल्लू को घर से बाहर करने की, बात ही नहीं सोची जा सकती थी, और ऐसा सोचते भी क्यों ? पिल्लू था ही बहुत प्यारा ...उसका मासूम सा चेहरा और प्यारी-प्यारी सी आँखें मानों... यही कह रही थी कि मुझे अपने घर का सदस्य बना लो। ...जूही तो वैसे भी बहुत दिनों से ज़िद कर रही थी कि -"मम्मी मुझे एक छोटा सा पिल्ला ला दो मेरी बहुत सारी फ्रेंड्स के पास है।"

लेकिन जब मैंने उसे अपनी व्यस्त दिनचर्या बताई और... पिल्लू की देखभाल के लिए कुछ ज़िम्मेदारी लेने की बात भी की; जैसे कि सुबह और शाम उसे घुमाना और नहलाना ...तो वह, अपनी इच्छा को मन में दबा कर चुप बैठ गई थी... लेकिन आज उसकी यही इच्छा, पिल्लू ने अपने आप आकर पूरी कर दी थी।

पिल्लू की माँ को हम अंदर बुलाना नहीं चाहते थे नन्हें से पिल्ले की माँ हमारे बच्चों के लिए आक्रामक भी हो सकती है, इसलिए बच्चों को उनसे दूर रहना ही बेहतर है और...पिल्लू को बच्चे अभी बाहर नहीं भेजना चाहते थे ...इसलिए छोटी सी कटोरी में उसे दूध पीने के लिए दिया गया। जूही और हैप्पी को छोटे से पिंल्लू की दूध पीते समय...पचर पचर आवाज़, बहुत लुभा रही थी... इसलिए वह बार-बार ज़िद कर रहे थे-"मम्मी, थोड़ा सा दूध और डालो ना कटोरी में।"

पिल्लू का इरादा, रात को भी बरामदे से बाहर जाने का नहीं था, पिल्लू की माँ ने उसे बाहर बुलाने के लिए कुछ संदेशात्मक आवाज़ें की।... पिल्लू बाहर गया और माँ का दूध पीकर, फिर से गेट के नीचे से सप्रयास अंदर आ गया।... इस प्रयास में उसकी माँ ने भी सहायता की।

"देखा जूही, यह नन्हा पिल्लू भी प्यार पहचानता है ...अब वह तुम्हारे साथ ही रहना चाहता है। ऐसा करते हैं ...आज बरामदे में डोरमेट पर, एक मुलायम-सा तौलिया बिछाकर, इसका बिस्तर तैयार कर देते हैं।"....थोड़ी देर में नींद की आगोश में सोते पिल्लू को देखा कि उसे बहुत

से मच्छर भी परेशान कर रहे थे... जूही ने झट से अपने कमरे का "ऑल आउट", पिल्लू के पास वाले प्लग में लगा दिया... अब वह निश्चित थी कि उसके पिल्लू को मच्छर परेशान नहीं करेंगे... तभी यह सोच कर कि वह रात में सोने की जगह भी बदल सकता है... उसके चारों पैरों और मुँह पर, ओडोमास भी लगा दी गई थी, और फिर ऐसा लगभग हर रात को किया जाने लगा। बरामदे से अंदर ड्राइंग रूम में हम सब की वार्तालाप को सुनकर वह जाली के दरवाज़े पर अपने पैर बजाता कि जैसे कह रहा हो-"तुम सब अंदर और मैं बाहर, यह तो मेरे साथ नाइंसाफी है।"

और तब हैप्पी और जूही उसे भी अंदर ले आते ...उसके आने से बातचीत का विषय बदल जाता और हम सभी उसके साथ खेलने और उसे प्यार करने में व्यस्त हो जाते थे।.... एक चीज़ जो मुझे महसूस हुई वह यह कि उसके आने के शुरुआती दिनों में यहाँ रहने के लिए उसकी आँखों में एक निवेदन दिखाई देता था... और अब निवेदन, धीरे- धीरे अधिकार में बदल गया था।.... अब वह बच्चों के साथ छुपा छुपाई खेलता था ..., बरामदे में रखे जूता चप्पल स्टैंड से निकाल कर चप्पलों पर अपने दाँतों की ज़ोर आज़माइश से, उनका आकार-प्रकार तो बिगाड़ ही चुका था... अपने नन्हें-नन्हें पैरों से क्यारी की मिट्टी फर्श पर बिखेर देता था उसे सौ खून माफ क्योंकि वह बहुत प्यारा था। पिल्लू की माँ निश्चित समय पर घर के बाहर आकर उसे दूध पिला जाती थी ...बच्चों के लिए तो उसकी दिनचर्या एक व्यस्तता बन गई थी ...अब वह क्या कर रहा है... बरामदे के किस कोने में बैठा है ...वगैरह वगैरह ...थोड़ा सा उसके साथ खेलना कूदना और फिर अपनी पढ़ाई में जुट जाना।

लगातार बरामदे में उसे देखकर, हमारे पास पड़ोसी भी हमसे कहने लग गए थे-

"अरे...अगर कुत्ते पालने का ही शौक है... तो अच्छी ब्रीड का एक कुत्ता ले आइए इस स्ट्रीट डॉग से क्यों मन बहला रहे हैं?"

अब उन्हें यह कैसे समझाते कि यह लाया नहीं गया है स्वयं आया है और जब इससे प्यार हो गया है तो कैसा विदेशी और कैसा देशी...?

जैसे-जैसे वह बड़ा हो रहा था...उस की शैतानियाँ भी बढ़ती जा रही थी और इसीलिए ...अब वह बच्चों को और भी प्यारा लगने लगा था। बच्चे चाहते थे कि उसके लिए एक प्यारा सा पट्टा लाया जाए। लेकिन मैं जानती थी कि इसे पालना संभव नहीं इसलिए उनकी इस फरमाइश को टालती जा रही थी।

बड़े हो रहे पिल्लू ने अब बरामदे से बाहर अपनी माँ और अन्य कुत्तों के साथ, अधिक समय गुज़ारना शुरू कर दिया था... लेकिन सुबह शाम, बच्चों के साथ खेलना, कटोरी में दूध पीना...और रात को निश्चित जगह पर सो जाना...पूर्ववत् था। कुछ समय से वह कचरे में पड़े हुए बच्चों के यूज़्ड डायपर, सैनिटरी नैपकिंस, रात में हमारे बरामदे में ले आता था और उन्हें पूरे बरामदे में अपने दाँतों से फाड़कर, फैला देता था, रोज़ सुबह उठते ही उस गंदगी को हटाकर, बरामदा साफ करना होता था। लेकिन हद तो तब हो गई जब वह छोटे जानवरों के अंग अवशेष भी बरामदे में लाकर फैलाने लगा ...दुर्गंध और वीभत्स दृश्य से सुबह-सुबह मन खराब हो जाता था। आख़िरकार सफाई करने वाली बाई ने भी कह दिया-

"मैडम, इतनी गंदगी में बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगी... या तो आप पिल्लू को रख लीजिए या फिर मुझे?"

अब यह तय किया गया कि रात में पिल्लू को बरामदे में प्रवेश नहीं दिया जाएगा, गेट से अंदर आने वाली उस सँकरी जगह पर, रात को ईंट लगा देते थे ताकि पिल्लू रात में, बरामदे में आकर गंदगी न फैला सके। गेट के बाहर लगातार कू कू करके वह हमसे निवेदन करता था- "अंदर नहीं आने दोगी तो भला कहाँ सोऊँगा?" एक दो बार उसके इस निवेदन पर गेट के अंदर ले लिया लेकिन सुबह फैली गंदगी ने फिर निर्णय लेने के लिए मजबूर कर दिया कि अब पिल्लू का रात को प्रवेश बंद।

सुबह गेट का ताला खोलते ही ईंट हटा देती थी जिससे वह अंदर आ सके ...उसके आते ही कटोरी में दूध देकर उसका स्वागत करती ...ऐसा लगता जैसे सारी रात से वह, बस सुबह का इंतज़ार ही कर रहा था। मन प्रसन्न हो जाता कुछ देर वह हमारे साथ खेलता और फिर हम और वह अपनी अपनी दुनिया में व्यस्त हो जाते।

किसी दिन सुबह उसे आने में देर हो जाती तो मन में यह आशंका आ जाती कि... कहीं रात में उसे कोई गाड़ी तो कुचल नहीं गई पिल्लू को ? पिल्लू पिल्लू ...कर एक दो बार आवाज़ लगाती ...तो वह दूरपास की गलियों से पुकारने पर आ जाता ...अपनी आशंका के निराधार होते ही, मैं उसे खूब सारा प्यार करती और वह मेरे प्यार पर निहाल हो जाता।

कॉलोनी में लगातार बढ़ रही कुत्तों की संख्या से श्रीमती झुनझुनवाला को विशेष आपत्ति थी... उन्हें कुत्तों से डर लगता है क्योंकि उन्हें एक बार गली का कोई कुत्ता काट चुका है ...गली के कुत्तों को खाद्य पदार्थ देकर उन्हें लपकाना भी वो ग़लत मानती हैं। पिल्लू की आँखों में कोई बात तो थी कि जो मैं उसे चाहे जितना भी दूर करना चाहती थी ... लेकिन मन के हाथों बेबस होकर उसकी राह देखती थी। पिल्लू की माँ हमारे घर आने जाने वालों पर विशेष निगाह रखती थी... मानों उसके बच्चे की देख रेख का आभार व्यक्त कर रही हो ...लेकिन बड़े होते पिल्लू की दुनिया.. अब धीरे-धीरे बड़ी होती जा रही थी और उसकी माँ ने भी.. पिल्लू की सुरक्षा में, सतर्कता कुछ कम कर दी थी।

तीस मार्च को जूही का परीक्षा परिणाम लेकर घर आते हुए कार में जूही खुश होकर कह रही थी -"मैं क्लास में फर्स्ट आई हूँ... अब तो मेरे पिल्लू के लिए एक सुंदर सा पट्टा ला दो ना मम्मी !... मैं उसके साथ खूब सारा खेलूँगी।"

"हाँ... हाँ देखेंगे!"...मैंने फिर टालने की कोशिश की थी।

"अब इसके लिए पट्टा नहीं लाएँगे लोग हमें कंजूस समझते हैं...सोचते हैं कि पैसा खर्च न हो, इसलिए हमने इस देशी पिल्ले को तुम्हारे लिए पाल लिया है, मैं तो सोच रहा हूँ कि तुम्हारे लिए एक पमेरियन पप्पी ले

आऊँ।"- जूही के पापा ने जूही से उत्साह से कहा था।

"नहीं पापा, मुझे तो यही पिल्लू ही चाहिए।" बच्चों को देशी या विदेशी ब्रीड से कोई लेना देना नहीं होता ...अब उसका मन पिल्लू से जो जुड़ गया था।

जब हम घर वापस आए तो गेट के बाहर सड़क पर कुछ लाल छींटे दिखाई दिए... मन आशंकित तो हुआ लेकिन पैर बचाते हुए हम घर के अंदर प्रवेश कर गए।...और घर आकर अपनी आशंका को मन में दबाते हुए ही मैं काम में जुट गई... कुछ देर बाद मेरी पड़ोसन ने बताया कि... "पिल्लू आपके बरामदे में गया था लेकिन आप सब घर पर नहीं थे इसलिए बाहर सड़क पर आ गया था कि तभी ...एक कार तेज़ रफ्तार में आई... ब्रेक लगाते हुए भी उसका आगे का एक पहिया पिल्लू को कुचल चुका था... कार के ड्राइवर को अफसोस भी था और दुख भी... पिल्लू की साँसें थम चुकी थी। वह ड्राइवर पास ही सफाई कर रहे सफाई कर्मी को 100 का नोट थमाकर, यह कहते हुए आगे बढ़ गया कि- "यार ग़लती हो गई, बहुत बड़ी ग़लती हो गई... तुम इसे कहीं दूर दबा देना।".....इस हादसे को केवल मैंने ही देखा था। सफाई कर्मी ने भी अपना काम जल्दी ही कर दिया।"

.... सुनकर दिल धक से रह गया, इतने प्यारे से पिल्लू को, इतनी बुरी मौत मिली ...वह बेचारा बस इतनी सी ही ज़िंदगी लेकर इस दुनिया में आया था लेकिन यह भी सब्र रखना पड़ा कि यह हादसा हमारी अनुपस्थिति में हुआ और बच्चे अपने प्यारे पिल्लू की दुर्घटना और विकृत शरीर को देखकर विचलित होने से बच गए।

इस दुखद सूचना को सुनकर जूही की रिजल्ट की खुशी काफूर हो गई... जिस पिल्लू के साथ वो अधिक से अधिक समय गुज़ारना चाहती थी... वह अब इस दुनिया से ही चला गया था किसी के दूर होने का दुख बच्चों ने पहली बार महसूस किया था ...इसलिए वो बहुत मायूस थे।

बच्चे इस दुख से बाहर आ सके इसलिए हम जानबूझकर अन्य विषयों पर बातचीत कर रहे थे ...बच्चे भी यंत्रवत् सामान्य दिखने की कोशिश कर रहे थे। पिल्लू की माँ बार-बार गेट के आस-पास आकर झाँक रही थी और... उसके बाद वह और गलियों में उसे ढूँढ़ने निकल जाती थी...गलियों में उसे ना पाकर उसे यह यकीन था कि पिल्लू यहीं हमारे घर पर ही होगा ...उसे वह अपने अंदाज़ में आवाज़ देकर बुला रही थी... लेकिन पिल्लू के गेट के बाहर नहीं आने पर वह व्यथित हो गई थी...अब उसकी आवाज़ों में माँ की पुकार के साथ ...एक वेदना भी थी... उस माँ की मार्मिक आवाज़ ...सीधे दिल पर चोट कर रही थी... मन और आँखें भीग गई थी। पता नहीं, पिल्लू की माँ ने उस हादसे को देखा था या नहीं ? लेकिन थोड़ी थोड़ी देर बाद आ कर अपने बच्चे को पुकार जाती थी कि शायद इस बार पिल्लू बाहर आ सके। हमने गेट खोल कर पिल्लू की माँ को अंदर बुला लिया कि वह तसल्ली कर ले कि अब उसका पिल्लू यहाँ नहीं है। पूरे बरामदे में घूमने के बाद पिल्लू की माँ ने मेरी ओर इस निरीह नज़र से देखा कि जैसे कह रही हो "मैंने तुम्हें सौंपा था अपना पिल्लू, तुम उसका ध्यान नहीं रख पाई ना ?" और फिर वह बरामदे से बाहर चली गई और उसके बाद पिल्लू को बुलाने के लिए, उसकी गेट से बाहर से की जा रही पुकार भी बंद हो गई।... उस हादसे के बाद, पिल्लू की माँ, हर आती-जाती कार के ड्राइवर के गेट की तरफ ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए पीछे पड़ जाती थी...शायद वह हर कार के ड्राइवर को, अपने बेटे का हत्यारा मानती थी, उसे इस बात की फिक्र नहीं होती थी कि इस तरह पीछे पड़ने पर वह खुद भी कार से कुचल सकती है।

और कुछ दिनों लगातार भौंकते हुए गाड़ियों का पीछा करते रहने के बाद ...वह सड़क पर दिखाई नहीं दी... ऐसा लगा कि वह, यह जगह ही छोड़कर चली गई है। लेकिन चार-पाँच दिन बाद माहौल में एक मरे हुए जानवर की गंध समाने लगी... और वह गंध धीरे-धीरे तीव्र होते हुए असहनीय हो गई। जब गंध की तीव्रता की दिशा के सहारे उस मरे हुए जानवर को खोजने का प्रयास किया... तो पास ही खाली पड़े प्लाट पर रखी हुई एक पुरानी कार के नीचे देखा तो दिल दुख से भर गया पिल्लू की माँ ... मृत पड़ी थी। ...सामने बालकनी से झाँकती हुई श्रीमती झुनझुनवाला बोल पड़ी- "इन स्ट्रीट डॉग्स के साथ यही बड़ी प्रॉब्लम है... जब तक ज़िंदा रहता है ...गंदगी फैलाता है और मरने के बाद बदबू फैलाता है.. पता नहीं... नगर निगम इन्हें क्यों शहर से बाहर नहीं कर देती ?"

उसका मृत शरीर एक खुले प्लॉट पर था.. इसलिए बदबू से तो सब परेशान थे... लेकिन उसे वहाँ से हटवाने की ज़िम्मेदारी पर कोई बात नहीं कर रहा था आख़िरकार ...मैंने सफाई कर्मी को फ़ोन पर मनुहार की, कि वह आकर उसे शीघ्र यहाँ से हटा दें, शीघ्रता के लिए उसे मैंने पैसे का भी प्रलोभन दे दिया था। हम पड़ोसी वहाँ पर खड़े हुए थे कि तभी सभरवाल जी का ड्राइवर वहाँ से गुज़रा... लोगों की भीड़ देखकर वहीं रुक गया - "अरे... यह मर गई! चार या पाँच दिन पहले देर रात जब मैं गाड़ी यहाँ साहब के घर रखने आ रहा था तो यह, खिड़की की ओर से मुझ पर पंजों से आक्रमण करने को बेताब हो कर बहुत देर तक मेरी कार का पीछा करती रही ...इस प्रयास में सफल न होने पर जैसे जानबूझकर ही बोनट से टकरा गई थी... उसके टकराने की आवाज़ तो ज़ोर से थी लेकिन मैंने उसे लंगड़ाते हुए धीरे-धीरे उस प्लॉट में रखी कार के नज़दीक जाते हुए देखा था ...बुरा हुआ... वह मेरी कार से टकराकर मर गई।"- इस अफसोस के साथ ड्राइवर चला गया था।

लोगों का कहना था कि इस तरह कारों के पीछे-पीछे भागने से... एक न एक दिन इसके साथ, ऐसा तो होना ही था।... लेकिन मेरा यह मानना है कि... अपने प्यारे पिल्लू की दर्दनाक मौत के बाद पिल्लू की माँ ने, पिल्लू की तरह ही पिल्लू के बराबर ही दर्द सहकर पिल्लू के पास जाने के लिए... स्वयं को कार से टकरा दिया था। माँ का दर्द, माँ की वेदना...एक दुखियारी माँ से कुछ भी करवा सकती है ... पिल्लू की माँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बनकर मेरे सामने पड़ी हुई थी।

000

नई क़लम

वाइड इफेक्ट

दर्शना जैन

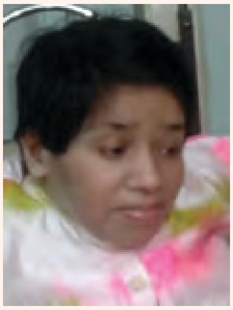

दर्शना जैन
रामकृष्ण गंज, खंडवा, मप्र - 450001
मोबाइल- 9827502066
ईमेल- 2.6.77.darshanajain@gmail.com

घर का नाम 'शांति सदन' था। यह नाम चंपालाल जी ने अपने बेटे शांतिलाल के नाम पर रखा था। बेटे के नामकरण के पीछे कारण था, जब वह पैदा हुआ तो सभी ने कहा कि इसका चेहरा कितना शांत लग रहा है। चेहरे का यह शांत भाव बड़े होने पर व्यवहार में भी आ गया। बच्चे स्कूल में आपस में झगड़ते हैं लेकिन वह बच्चों में झगड़ा होते देखता तो वहाँ से दूर हट जाता था। स्कूल में शांत रहता, सभी टीचर्स व प्रिंसिपल की आँखों का तारा था वह। घर में भी ऐसे शांत रहता कि बच्चे के होने का किसी को पता ही नहीं चलता। न कोई शोर, न मस्ती, न उठापटक। चंपालाल जी और उनकी पत्नी यह सोच खुश होते कि सही नाम रखा है हमने अपने बेटे का। माता-पिता बेटे को बड़े लाड़ प्यार से पाल रहे थे, उसका बहुत ख़याल रखते। विवाह योग्य होने पर बहुत ठाठबाट से पुत्र का विवाह किया और अब दादा दादी बनने का सपना देखने लगे। अचानक गंभीर रूप से बीमार पड़ने पर सपने के साथ चंपालाल जी व उनकी पत्नी भी चल बसे।

माता-पिता के जाने का गम बेटे शांतिलाल को विचलित कर रहा था, तब पत्नी पद्मा ने पत्नी धर्म निभाते हुए पति को सँभाला। समय धीरे-धीरे सब ठीक करने लगा।

शांतिलाल जी के घर तीन संतानों का पदार्पण हुआ। बड़ा बेटा जयेश, मंझला किशोर और छोटा अरुण। बचपन में तीनों के बीच प्रेम का रिश्ता था। फिर तीनों पढ़ने के लिये बाहर चले गए। बाहरी परिवेश कभी-कभार व्यवहार में अंतर ले आता है। शांतिलाल जी को यह अंतर तुरंत नज़र आया, उन्होंने बेटों को समझाने का प्रयास किया लेकिन समझाना आसान नहीं था। ख़ैर, वे

वैवाहिक उम्र तक पहुँचे, शादी हुई और तीनों की पत्नियाँ आ गईं। पत्नियाँ अच्छी थी किंतु उनका स्वभाव कभी-कभी उग्र हो जाता था।

ऐसे शुरू हुए झगड़े, तनातनी, बहसबाजी से 'शांति सदन' की शांति भंग हो गई।

कभी सास पद्मा जी अपनी बहू पल्लवी से चिल्लाकर कहतीं,"पूजा घर में चप्पल पहन कर चली गई, वह गंदा हो गया। तुम्हें नहीं पता कि वहाँ चप्पल उतारकर जाया जाता है। अब पूजा घर को धोना पड़ेगा।" तो पल्लवी गुस्से में अपने पति जयेश से कहती, "मैंने कोई जानबूझकर ऐसा किया है क्या? हो जाती है ग़लती, सासू माँ से ग़लती नहीं होती क्या कभी?"

कभी पल्लवी की जेठानी जया कहती कि सारा काम मुझे ही करना पड़ता है तो देवरानी कहती कि जया दीदी यह जताना चाहती है कि हम तो हाथ पर हाथ रख फालतू बैठे रहते है, कुछ नहीं करते हैं। कभी जयेश अपने भाई किशोर से कहता, "मैं बड़ा हूँ इसलिये फेक्ट्री में जो भी फ़ैसला लेता हूँ, तुम्हें मानना चाहिए।" किशोर तमक कर जवाब देता कि मैं छोटा हूँ तो क्या हुआ, दिमाग़ मुझमें भी है।" घर में हर किसी ने दूसरे के प्रति कोई शिकायत पकड़े रखी थी। शांतिलाल जी अपनी पत्नी से कहते, "तुम बच्चों को समझाती क्यों नहीं कि ऐसे झगड़ा न किया करें, शांत रहना सीखें।" फिर खुद ही बोलते कि तुम क्या समझाओगी, तुम तो स्वयं ही कभी-कभी....। पद्मा जी बोलतीं कि आप चिंता क्यों करते हैं, थोड़ा बहुत झगड़ा, खींचातानी तो हर घर में होती है।

उस दिन से 'शांति सदन' के माहौल का कायापलट हो गया। जहाँ हर वक्त शोर मचा रहता था वहाँ अब सब मिलकर पूजा, प्रार्थना करने लगे। वैसे इस कायापलट की वजह थे पल्लवी के सास-ससुर। सास-ससुर की समझाइश इस परिवर्तन की वजह नहीं थी। दरअसल उन्हें बुखार था जो तीन दिन होने को आए पर उतरने का नाम नहीं ले रहा था, साँस लेने में भी थोड़ी दिक्कत हो रही थी। मुसीबत के समय जहाँ मन में जकड़ा, दिमाग़ में पकड़ा छोड़कर सभी एकजुट हो जाएँ उसे ही सही मायने में परिवार कहा जाता है। यही हुआ शांतिलाल जी के परिवार में। किशोर ने अपने दोस्त डॉक्टर संजीव को फ़ोन किया, उसने मम्मी-पापा को अस्पताल लाने को कहा। जयेश ने तुरंत कार निकाली। किशोर मम्मी-पापा को लाया, जयेश ने भाई को हल्की सी डाँट लगाई, "अस्पताल क्या बिना मास्क पहने चलोगे? मम्मी-पापा को और बीमार करना है क्या? मास्क नहीं लगाओगे तो खुद भी बीमार पड़ोगे। जाओ, मास्क लेकर आओ तब तक मैं मम्मी-पापा को कार में बिठाता हूँ।" किशोर को बड़े भैया की डाँट का बुरा नहीं लगा; क्योंकि इस बार डाँट हर बार से बहुत अलग थी, उसमें झलक थी फ़िक्र की। अस्पताल के लिये निकलते समय जयेश ने छोटे भाई अरुण से कहा कि घबराना मत, अस्पताल पहुँचकर हम फ़ोन करेंगे। भाइयों का बचपन वाला प्यार अँगड़ाई लेकर जाग उठा।

अस्पताल पहुँचते ही डॉ. संजीव राह देखते मिल गए। उन्होंने किशोर के पिता व माँ की जाँच की और कहा, "लक्षणों के आधार पर इन्हें कोरोना होना चाहिए, फिर भी कंफर्म करने के लिये मैंने सैंपल लैब में भेज दिये हैं। कल तक रिपोर्ट आ जाएगी, वैसे मैंने इलाज शुरू कर दिया है।"

कोरोना का नाम सुनते ही दोनों भाइयों के चेहरे की हवाइयाँ उड़ गईं। टीवी चालू करते ही कोरोना की ख़बरें, अख़बार का उसके ख़तरे, उससे हो रही परेशानियों से भरा रहना किसी को भी डराने के लिये काफी था। जयेश ने घर फ़ोन करके बताने का कहा था पर हिम्मत नहीं हो रही थी। अब बताना तो था सो उसने पल्लवी को मैसेज कर दिया। डॉ. संजीव ने किशोर को दिलासा दिया, "चिंता मत करो, अंकल और आंटी मेरी निगरानी में रहेंगे। उन्हें कुछ नहीं होगा। उनके इलाज में कोई कमी नहीं रहेगी, वे जल्दी ठीक हो जाएँगे। मैं यहीं हूँ, तुम भैया को लेकर घर जाओ।" इस दिलासा ने भाइयों की चिंता को कुछ हद तक कम किया और दोनों घर के लिये रवाना हो गए।

मम्मी-पापा की तबीयत की वजह से माहौल टेंशन का था। रास्ते में दोनों भाई कुछ देर चुप रहे। बचपन का प्यार तो पहले ही जाग चुका था। वे अपनी भावनाओं को एक दूसरे से साझा करने लगे। किशोर ने कहा कि भैया मैं आपसे झगड़ा किया करता था, आपकी बातों को काटा करता था लेकिन आज...। जयेश ने कहा कि मैं भी तुम्हें अपने बड़े होने का रौब दिखाता रहता था, चिल्ला देता था, किंतु....।

घर पर सभी उनकी राह देखते दरवाज़े पर ही खड़े थे, सब के माथे पर चिंता की लकीरें थी। किशोर ने सभी को वैसे ही सांत्वना दी जैसे उसके दोस्त डॉ. संजीव ने उसे दी थी। अगले दिन किशोर ने संजीव से बात कर मम्मी-पापा के लिये घर से खाना लाने की अनुमति ले ली थी।

घर की तीनों बहुओं ने आपस मे तय कर लिया कि मम्मी-पापा के लिये कौन कब खाना बनाकर भेजेगा। कोई बहस नहीं हुई, तीनों को अपने ही सामंजस्य भरे व्यवहार पर यकीन नहीं हो रहा था। शायद इसकी वजह भाइयों का व्यवहारिक परिवर्तन था, उनमें तालमेल स्थापित हो चुका था। तीनों में से कोई भी, जब जिसे समय मिलता, फ़ोन लगाकर डॉ. संजीव से माता-पिता के हालचाल पूछ लेता और बाकी दोनों को बता देता। 'मैं बड़ा हूँ' वाली बात ही नहीं होती।

पंद्रह दिन बाद शांतिलाल जी और पद्मा जी अस्पताल से घर लौटे। कमज़ोरी अभी भी थी। बेटों ने उनके स्वास्थ्य का, दवाइयों का ख़याल रखा और बहुओं ने खानपान का। पद्मा जी हैरानी से यह देख रही थीं।

पत्नी की यह हैरानी देख शांतिलाल जी ने बहुओं व बेटों से कहा,"जो मैं तुम्हारी मम्मी से तुम्हें समझाने को कहता वह भगवान् ने सांकेतिक रूप में हमारी बीमारी के जरिये तुम लोगों को समझा दिया। मुझे खुशी है कि तुम परिवार की सच्ची परिभाषा समझ गए, इसे हमेशा याद रखना, भूल मत जाना।"

पद्मा जी ने कहा," बीमारी का, दवाइयों का साइड इफेक्ट होता है यह तो सुना था लेकिन यहाँ तो हमारी बीमारी का वाइड इफेक्ट हो गया।"

000

शिल्पी

बांग्ला कहानी

मूल लेखक : सत्यजीत राय

अनुवाद : सुचिस्मिता दास

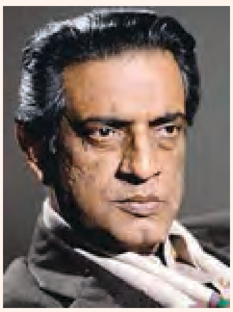

सुचिस्मिता दास
"नीलालोक", गुरूपल्ली (पश्चिम),
शांतिनिकेतन, बीरभूम, पश्चिम बंगाल,
731235,
मोबाइल- 9851531176
ईमेल- suchismitadas2000@gmail.com

अवनीश उस तस्वीर को कुछ पल निहारता रहा। ऑयल पेंटिंग, एक अधेड़ उम्र के सुदर्शन पुरुष का पोट्रेट। अविनाश के स्टूडियो के एक कोने में और भी 8-10 तस्वीरों के बगल में खड़ा किया हुआ था। यह अवनीश का बनाया हुआ पहला पोट्रेट था। उस समय लगभग दो साल हो चुके थे उसे गवर्नमेंट आर्ट कॉलेज पूरा करके निकले हुए। विद्यार्थी जीवन में यूँ तो उसने कई पोट्रेट बनाए थे और उसमें काफी नाम भी कमाया था। चित्रकारी को पेशा बनाने की इच्छा तो थी उसकी पर शुरुआत किस तरह करे इसी चिंता में था।

घर में माता-पिता के अलावा एक छोटी बहन भी थी जिसकी कुछ दिन पहले ही शादी हुई थी। पिता हिमांशु बोस काफी प्रसिद्ध एवं सफल बैरिस्टर थे। उन्होंने हमेशा अवनीश का उत्साह बढ़ाया था।

उन्होंने एक दिन बेटे को बुलाकर पूछा-

'तुम क्या चित्रकार बनना चाहते हो?'

'हाँ, इच्छा तो ऐसे ही है।'

'तुम्हारे पास पेंटिंग का सारा सामान है?'

'नहीं, सब तो नहीं, खरीदना पड़ेगा, जैसे- रंग, कैनवास।'

'अच्छी बात है जल्दी खरीद लो। जितने भी पैसे लगे मेरे पास से ले लेना।'

सब कुछ खरीदा गया। अवनीश तस्वीर बनाने के लिए खाली कैनवास के सामने खड़ा भी है, पर उसे समझ में नहीं आ रहा कि शुरुआत कैसे करे। किस तस्वीर से!

अंबिका सेनगुप्त की तस्वीर बनाने का सुझाव उसके बचपन के दोस्त निखिल ने ही दिया। हालाँकि निखिल कलाकार नहीं था पर अपने मित्र का सच्चा सलाहकार था। उसके पिता थे डॉक्टर रजनी दत्त।

एक दिन अवनीश के घर आकर निखिल ने खाली-खाली कैनवास देखकर उससे पूछा– 'क्या बात है? अभी तक तुमने कुछ शुरू नहीं किया?'

अवनीश ने कहा– 'क्या बनाऊँ यही तो तय नहीं कर पा रहा।'

'क्यों, पोट्रेट बनाओ। वही तो तुम्हारी ख़ासियत है।'

'पर किसका पोट्रेट? रास्ते से यूँ ही तो किसी को पकड़ कर उसकी तस्वीर नहीं बना सकता न! और वैसे भी फ़ोटोग्राफ़ी के ज़माने में आजकल पोट्रेट बनाना ही कौन चाहेगा।'

'ठीक है, तू मुझे दो दिन का समय दे। मैं सोच कर बताता हूँ।'

दो दिन बाद निखिल आकर कहता है–'तूने अंबिका सेनगुप्त का नाम सुना है?'

अवनीश ने ना में सिर हिलाया।

'स्टीफेन एंड गिल्फोर्ड कंपनी का एक बड़ा भागीदार है यह इंसान। मेरे पिता के अच्छे दोस्त हैं। एक दिन बातों ही बातों में उन्होंने मेरे पिताजी से क्लब में कहा था– 'आजकल तो पोट्रेट बनाने का ज़माना ही नहीं रहा। पिताजी की पचास साल पुरानी तस्वीर है। जो उस समय के एक नामी चित्रकार ने बनाई थी। असाधारण कलाकारी, वैसी बात फ़ोटोग्राफ में कहाँ!' साथ ही उन्होंने इच्छा ज़ाहिर की थी कि उस दर्जे का कलाकार मिले तो वो अपनी भी एक पोट्रेट बनवाएँ'

यह सुनने के बाद ही निखिल के दिमाग़ में अवनीश की बात आई।

निखिल ने कहा– 'पोट्रेट बनाने में तुझे महारत हासिल है। मैं पिताजी से तेरी बात कहता हूँ। वह सेनगुप्त जी से बात कर लेंगे।'

तीन दिन बाद निखिल वापस आया। उसने कहा– 'तुम्हारा बुलावा आया है।'

'कहाँ ?'

'सात नंबर रॉयल स्ट्रीट, अंबिका सेनगुप्त के घर।'

'कब जाना होगा?'

'रविवार। सुबह नौ बजे।'

डरते-डरते अवनीश निर्धारित समय और पते पर पहुँचा। नौकर ने उसे बैठक में इंतज़ार करने को कहा। जल्दी ही अंबिका बाबू आ गए। सच में उनका व्यक्तित्व तस्वीर के लायक ही है। उन्होंने पूछा– 'तुम ऑयल पोट्रेट बनाते हो'

'जी हाँ।'

'मेरे एक मित्र डॉक्टर दत्त के बेटे ने तुम्हारी काफी तारीफ की है। तुम्हें एक पोट्रेट बनाने में कितने दिन लगते हैं?'

'दस दिन से ज़्यादा नहीं।'

'ठीक है, तुम कल से ही शुरुआत कर दो। मुझे जल्दी कलकत्ता से सारा काम समेट कर दिल्ली चले जाना होगा। तुम्हें तस्वीर के लिए मेरे घर ही आना होगा। सुबह ८ से ९ का समय। रेट कितना है तुम्हारा?'

'मैं तो प्रोफ़ेशनल काम पहली बार कर रहा हूँ, इसलिए आप जो सही समझे वही दीजिए।'

'पाँच सौ?'

'ठीक है।'

'हाँ, और एक बात, तीन दिन के अंदर मुझे अगर तुम्हारा काम पसंद नहीं आया तो मैं वहीं काम रुकवा दूँ। तब तक का मेहनताना मिलेगा, लेकिन पूरे पैसे नहीं मिलेंगे।'

अवनीश ने यह शर्त भी मान ली।

अगले दिन से ही काम शुरू हो गया। अवनीश एक रिक्शे पर सारा साजो-सामान उठाकर ले आया। अंबिका सेनगुप्त भी एकदम आठ बजे तैयार होकर बैठक में हाज़िर हो गए। आते ही पूछा–'कहाँ बैठना होगा मुझे बता दो।'

'आप उत्तर दिशा की खिड़की के पास बैठ जाइए। यह रोशनी पोट्रेट के लिए एकदम सही है।'

'हाथ में किताब वगैरह, बगल में टेबुल ये सब नहीं रखवाना है?'

'आजकल वो चलन नहीं रहा। मैं तो आपकी आवक्ष पेंटिंग बनाउँगा। आप इस कुर्सी पर आराम से बैठ जाइये। खड़े होने की ज़रूरत नहीं है।'

'वाह तब तो आसान काम है मेरे लिए।'

तीन दिन के अंदर-अंदर तस्वीर से मिस्टर सेनगुप्त को पहचाना जा सकता था। उन्होंने खुश होते हुए अवनीश को शाबाशी दी। अवनीश ने भी राहत की साँस ली।

लेकिन अगले ही दिन एक ख़बर ने सब बिगाड़ दिया।

'तुम्हें और सिर्फ तीन दिन की मोहलत दे पाऊँगा। आज से चौथे दिन मुझे दिल्ली जाना ही पड़ेगा। दो साल से पहले लौटने की संभावना नहीं है। बीच में एक-दो दिन के लिए आ सकूँ तो भी तुम्हें समय नहीं दे पाऊँगा।'

अवनीश का भी सारा उत्साह जाता रहा। वह जानता था कि कितनी भी कोशिश करें तीन दिन में पोट्रेट पूरा नहीं कर पाएगा। इधर काम अब तक काफी अच्छा आगे बढ़ रहा था। उसने पूछा–'तो क्या आप अधूरी तस्वीर ही ले जाऐंगे अपने साथ?'

'नहीं उसका क्या फायदा ! जितना कर पाओ करो, फिर अधूरी तस्वीर तुम अपने पास ही रखना। हाँ तुम्हारा पैसा मैं दे दूँगा।'

तीन दिन के परिश्रम से अवनीश तस्वीर का बारह आना पूरा कर चुका था। अम्बिका सेनगुप्त देखकर बहुत खुश हुए और उसे उज्ज्वल भविष्य का आशीर्वाद दिया। साथ ही उन्होंने पाँच सौ की जगह सात सौ रुपये दिये। यहीं पर ख़त्म हुई अंबिका सेनगुप्त के पोर्ट्रेट की कहानी।

इसके बाद प्रोफ़ेशनल रूप से चित्रकारी करने को अवनीश ने अपना लक्ष्य बना लिया। इसी से उसे अपनी रोज़ी-रोटी कमानी थी। पिता हमेशा मदद करने को तैयार थे। पर ज़्यादा दिन उनकी मदद लेना भी सही नहीं था। लेकिन अभी भी उसकी एक ही चिंता थी, कि किस स्टाइल की तस्वीर बनाए– पारंपरिक या मॉडर्न आर्ट!

अम्बिका बाबू के दिल्ली जाने के कुछ ही महीने बाद चित्रकूट आर्ट गैलरी में जाकर उसने देखा कि सारी बेसिर पैर की तस्वीरें है जिसे लोग मॉडर्न आर्ट के नाम से ऊँची कीमतों पर मोल ले रहे हैं। उसे तस्वीरें बिल्कुल पसंद नहीं आई। उसने कहा भाड़ में जाए मॉडर्न आर्ट। वह अपने तरीके से

चित्रकारी करेगा। कोई खरीदे या न खरीदे। अगले छह महीनों में उसने बत्तीस पेंटिंग्स बना डाली। कुछ प्राकृतिक दृश्यों के लिए उसे पुरी, घाटशिला और गंगटोक भी जाना पड़ा। उसे समझ आ गया कि प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में भी वह बुरा नहीं है।

एक दिन निखिल उससे मिलने आया उसने कहा–'वाह तस्वीरें तो बहुत ख़ूबसूरत बनी हैं, लेकिन मुझे डर है कि शायद बाज़ार में इनका चलन अब नहीं रहा। तुम प्रदर्शनी में तो दोगे ना इनको?'

'इच्छा तो ऐसी ही है। प्रदर्शनी में ना दूँ तो इन्हें बेच कर पैसे कहाँ से आएँगे?'

'अच्छा एक आर्ट गैलरी है, 'रूपम'। तुमने नाम तो सुना ही होगा। उसके मालिक पुरुषोत्तम मेहरा, मेरे पिताजी के मरीज़ थे। बहुत ही जटिल बीमारी से पिताजी ने उन्हें बचाया था। इंसान तो पुराने समय का है पर प्रदर्शनी में तस्वीरें सारी आधुनिक ढाँचे की लगाता है। मैं उनसे फ़ोन पर बात कर लूँगा। तू अपनी दो-चार तस्वीरें लेकर उनको दिखा। शायद वे प्रदर्शनी में लगाने को राज़ी हो जाएँ।' अवनीश यथासमय पुरुषोत्तम मेहरा से जाकर मिला उन्होंने कहा कि अवनीश का स्टाइल पुराना है, आजकल माँग मॉडर्न आर्ट की है इनकी नहीं। अवनीश ने कहा–'पर मुझे तो ऐसी तस्वीरें बनाना ही अच्छा लगता है।'

मिस्टर मेहरा ने कहा– 'देखिए अवनीश बाबू मैं आपसे झूठ नहीं कहूँगा। मेरी गैलरी में नामी-गिरामी कलाकारों के अलावा मैं किसी की तस्वीर लगाता नहीं। वही लगाया जाता है जिसकी बिकने की संभावना हो। क्योंकि बिके हुए तस्वीरों की कीमत का एक तिहाई हिस्सा ही मेरा कमीशन है। इसी तरह हमारा व्यापार चलता है। न बिके तस्वीर तो हमारा ही नुकसान।'

इतना सुनकर अवनीश निराश हो गया।

मिस्टर मेहरा ने आगे कहा –'पर आप डॉक्टर दत्त के बेटे के खास मित्र हैं। आपकी तस्वीरें मैं ज़रूर लगाऊँगा।'

पता चल जाएगा कि ऐसी तस्वीरों के ख़रीददार सच में हैं भी या नहीं। आपको लेकिन हमारी शर्तें मान कर चलना पड़ेगा।'

अवनीश राज़ी होकर खुशी-खुशी घर वापस आ गया।

इसके लगभग एक महीने बाद रूपम आर्ट गैलरी में गैलरी में अवनीश की तस्वीरों की प्रदर्शनी लगी। इसमें 32 तस्वीरें थी। अम्बिका सेनगुप्त का पोर्ट्रेट भी था, लेकिन वह बेचने के लिए नहीं। अपनी पहली कृति को वह खोना नहीं चाहता था। दस दिन तक प्रदर्शनी चली। पहले तीन दिन ज़्यादा भीड़ नहीं हुई पर चौथे दिन से काफी लोग आने लगे और अवनीश की तस्वीरें भी बिकने लगीं। उसे तस्वीरों की कीमत कुछ कम ही रखी थी, फिर भी उसे इतनी उम्मीद न थी। कुल चौदह तस्वीरों के बिकने के बाद कमीशन का पैसा चुका कर उसे साढ़े चार हज़ार रुपये मिले। मिस्टर मेहरा ने भी खुशी ज़ाहिर करते हुए दोबारा प्रदर्शनी लगाने का सुझाव दिया।

लेकिन एक बात ने अवनीश का दिल बहुत दुखाया। वह थी पत्र-पत्रिकाओं में की गई तीक्ष्ण आलोचना। बहुतों ने कहा कि– 'यह पुराने ज़माने का चाल क्या कोई आज के समय में चलता है?' किसी ने कहा–'आज अगर कोई बंकिमचंद्र की भाषा का प्रयोग करके कोई उपन्यास लिखे तो क्या उसकी प्रशंसा करेगा कोई?' इनमें से अधिकांश को अवनीश जानता भी नहीं था। न ही वे ऊँचे दर्जे के कला समालोचक थे। इनमें से एक थे 'कृष्टि' साप्ताहिक के आनंदवर्धन। वैसे यह उनका असली नाम नहीं था, पर वे इसी नाम से काफी चर्चित थे। 'मांधाता-युग' शीर्षक देकर उन्होंने लिखा था– 'शिल्पी के काम पर एक नज़र डालने से ही पता चलता है कि कला जगत में युग परिवर्तन की उन्हें कोई जानकारी ही नहीं है। कैनवास और पेंट को इस तरह बर्बाद ना कर के अगर वह आधुनिक चित्रकारी पर थोड़ी पढ़ाई कर लें तो उनका भविष्य उज्ज्वल है। क्योंकि पेंटिंग का तरीका तो उन्हें आता ही है।' यह लेख अवनीश के साथ ही निखिल एवं उसके पिता ने भी पढ़ा। पिता ने कहा– 'आलोचकों को थोड़ा बढ़ा चढ़ाकर लिखने और पाठकों की संख्या बढ़ाने के लिए कटूक्ति करने में मज़ा आता है। तुम इतने हतोत्साहित मत हो।' निखिल ने कहा–'एक बार अगर इस आनंदवर्धन का असली परिचय मिल जाता तो इसकी अच्छी तरह धुलाई कर आता।'

लेकिन अवनीश पर आनंदवर्धन की बातों का गहरा प्रभाव पड़ा। उसने अच्छी तरह सोचा कि क्या वह अपने चित्रकारी का पुराना तरीका बदल कर नए तरह के चित्र बनाए! बार-बार उससे अपना अपमान तीर की तरह चुभता। अब वह किसी को बोलने का अवसर देना नहीं चाहता था। उसने तय कर लिया कि वह मॉडर्न आर्ट को जानकर ही रहेगा।

प्रदर्शनी के छह महीने तक उसने कोई तस्वीर नहीं बनाई। इसके बदले रोज़ नेशनल लाइब्रेरी जाकर मॉडर्न आर्ट पर सारी किताबों को ढूँढ़- ढूँढ़ कर पढ़ता।

धीरे-धीरे उसे पता चला कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में मूलत: फ्रांस के कुछ कलाकारों के प्रभाव से चित्रकारी की दुनिया में एक आमूल परिवर्तन आया। इससे कला की दुनिया पूरी तरह बदल गई। समय के साथ यह प्रभाव दुनिया के दूसरे देशों में भी पहुँच गया। इन किताबों से उसे काफी जानकारी मिली, लेकिन अपने तरीके की एक भी तस्वीर नहीं मिली। काफी कुछ जानने के बाद उसने लाइब्रेरी जाना बंद कर दिया।

दिन भर खुद को कमरे में बंद रखता और ड्राइंग बुक में पेंसिल से मॉडर्न आर्ट का अभ्यास करता रहता। इस तरह उसने लगभग तीस ड्राइंग बना ली। इधर उसका कैनवास खाली पड़ा था।

निखिल ने कहा–'तूने क्या तस्वीरें बनाना पूरी तरह छोड़ दिया है?'

अवनीश ने उसे सारी बात बता ही दी कि वह मॉडर्न आर्ट को अपनाने की सोच रहा है। और वैसी ही तस्वीरें बनाएगा जो प्रचलित हैं। निखिल ने कहा–'अच्छा मॉडर्न आर्ट! वह तो बहुत आसान है। बस कुछ आड़ी टेढ़ी लकीर खींच दो रंग से और तस्वीर तैयार। शायद कई हज़ार में बिक भी जाए।' अविनाश कहने को तो निखिल के साथ हँस पड़ा, पर उसे भी पता था कि यह इतना आसान नहीं है। इसके लिए टेक्नीक, इतिहास, निहितार्थ इन सब की गहन जानकारी आवश्यक है। वह चाहता था कि

अब वह ऐसी तस्वीर बनाए जिसे देखकर आनंदवर्धन को भी उसका लोहा मानना पड़े।

अगले दो साल अवनीश ने कड़ी मेहनत से नए ढाँचे की तस्वीरें बनाईं। इस बीच उसका रोज़गार भी बंद था। पिता ने उसकी काफी सहायता की। उन्होंने कहा कि– 'आजकल तुम्हारी चित्रकारी मुझे समझ नहीं आती, लेकिन तुम्हारी लगन और मेहनत मैं देख रहा हूँ। तुम्हें जब तक मदद चाहिए मैं तुम्हारे साथ हूँ।' अविनाश के मन में अपने पिता के लिए श्रद्धा और बढ़ गई। अगर पिता न होते तो वह कब का हार चुका होता।

आजकल उसे एक-एक तस्वीर बनाने में काफी समय लग जाता। दो साल में मात्र बाइस तस्वीरें ही बना पाया। अचानक एक दिन मिस्टर मेहरा का फ़ोन आया– 'क्या आपने तस्वीरें बनाना छोड़ दिया? मैं तो आपकी तस्वीरों की बाट जोह रहा था। काफी समय बीत गया तो लगा कि मैं ही हाल-चाल पूछ लूँ।' अवनीश ने बताया कि वह तस्वीरें बनाने में लगा है तो मिस्टर मेहरा ने घर आकर मिलने की बात कही। अगले इतवार को ही मिस्टर मेहरा अवनीश के स्टूडियो में हाज़िर हो गए।

'यह आपका काम है?'

'जी बिलकुल।'

'आपने तो अपना स्टाइल पूरा बदल दिया है!'

'कैसा लगा आपको यह नया स्टाइल?'

'मैं तो खुद ज़्यादा जानता नहीं आर्ट के बारे में। लेकिन रंग काफी सुंदर है आपकी तस्वीरों में। और आजकल की माँग ऐसी तस्वीरों के लिए ही ज़्यादा रहती है।'

उन्होंने सारी तस्वीरों को ध्यान से देखा और कहा कि इनसे ही 'रूपम' भर जाएगा। आख़िरकार प्रदर्शनी का दिन भी आ गया। दस दिन की प्रदर्शनी में बाइस में से सत्रह तस्वीरें बिक गई। लोगों से काफी सराहना भी मिली। इस बार कीमतें भी ऊँची रखी गई थी पर लोगों ने उसे भी हाथों-हाथ लिया। जितनी आय़ हुई, अवनीश के दो साल के खर्चे के लिए पर्याप्त थी।

समालोचकों की कलम फिर चलने लगी। 'कृष्टि' के आनंदवर्धन ने लिखा– 'आओ बेटा रास्ते पर आओ। लेकिन सही रास्ते पर चल कर भी शिल्पी के रूप में प्रतिष्ठित होने में तुम्हें कम से कम पाँच साल लगेंगे।'

अवनीश में गुस्से से पत्रिका फेंक दी। उसे पिता की बात ही ठीक लगी, चाहे कुछ भी कर लो आलोचक नकारात्मक ही बोलेंगे। अब उसके मन में आनंदवर्धन का असली परिचय जानने की इच्छा और तीव्र हो गई। निखिल ने कहा एक पुराने परिचित 'कृष्टि' में काम तो करते थे अगर अभी भी वही हों तो शायद आनंदवर्धन का असली परिचय जानना संभव हो सके।

लगभग एक महीना बीत गया। अवनीश अपने स्टूडियो में काम कर रहा था कि उसके नौकर गोविंद ने आकर कहा– 'एक साहब आप से मिलने आए हैं।'

अवनीश ने मन में सोचा कि फिर कौन आया? क्या कोई ग्राहक तस्वीर लेने आया है? क्योंकि अभी पिछले ही दिनों एक गुज़राती सज्जन दो तस्वीरें मोल ले गए थे।

'क्या नाम बताया सज्जन ने?'

'नाम तो नहीं बताया, बस कहा ज़रूरी काम है।'

'सामने वाले कमरे में उनको बिठाओ और बोलो मैं आता हूँ।'

अवनीश एप्रन खोलकर एक कपड़े से हाथ पोंछते हुए बैठक में दाखिल हुआ। सोफे पर बैठे थे तीस-पैंतिस वर्षीय एक सज्जन। आँखों पर चश्मा और चेहरे पर थोड़ी गंभीरता। अवनीश को देखते ही नमस्ते करते हुए खड़े हो गए। कहा–'मैं अम्बिका सेनगुप्त का पुत्र हिमांशु हूँ।'

'हाँ उस दिन आपके पिता का मृत्यु-संवाद समाचार पत्र में पढ़ा।'

'आपने मेरे पिता का एक चित्र बनाया था?'

'हाँ, बनाया तो था। लेकिन उस समय आपको नहीं देखा।'

'हाँ उस समय मैं दिल्ली में था। पिताजी के दिल्ली जाने के बाद मैं कलकत्ता आ गया। तब से यहीं पर हूँ।'

'अच्छा अच्छा।'

'अगर आप बुरा ना माने तो कुछ बात करनी थी।'

'हाँ, बोलिए ना।'

'कल शाम शिशिर मंच पर मेरे पिता की एक स्मरण-सभा का आयोजन है। उनकी कोई ढंग की फ़ोटोग्राफ मिल नहीं रही। तो क्या मैं एक दिन के लिए इस पोट्रेट को ले जा सकता हूँ? सभा के बाद वापस कर दूँगा।'

'हाँ, ले जाइए निश्चिंत होकर। इसमें संकोच कैसा! आप क्या अभी ले जाना चाहेंगे?'

'अगर पास ही हो और आपको कोई असुविधा न हो तो अभी ले जाता हूँ। एक दिन बाद लौटा दूँगा।'

'पाँच मिनट बैठिये, मैं अभी आया।'

अवनीश ने उसे सँभाल के ही रखा था। धूल झाड़ कर, कागज़ में लपेट कर, अवनीश ने वह तस्वीर हिमांशु सेनगुप्त को दे दी।

हिमांशु भी धन्यवाद देकर निकल गए।

अवनीश स्टूडियो में वापस जा ही रहा था कि निखिल अंदर आया।

–(आश्चर्य के साथ) 'किस को निकलते देखा!'

'हिमांशु सेनगुप्त, अम्बिका सेनगुप्त का पुत्र।'

'क्यों आया था?'

'पिता का पोट्रेट लेने।'

'इतने दिन बाद!'

'एक स्मरण-सभा के लिए ज़रूरी है।'

'और तूने दे दिया बिना कुछ बोले? यह बहुत ग़लत किया।'

'क्यों?'

'तुझे पता है वह कौन था?'

'क्यों, अम्बिका सेनगुप्त का बेटा।'

'अरे वह तो है, पर वही आनंदवर्धन है। जिसने तुझे पुराने ज़माने का कहा था।'

(चौंककर) 'हाँ!!'

'जी हाँ।'

धीरे-धीरे अवनीश का आश्चर्य बोध कम हो गया। फिर वह हिमांशु उर्फ आनंदवर्धन की भाषा में ही बोल पड़ा–

'आओ बेटा रास्ते पर आओ।'

000

नववर्ष का बलिदान

चीनी कहानी

लेखक: लू शुन

अनुवाद: विवेक मणि त्रिपाठी

विवेक मणि त्रिपाठी
सहायक प्रोफ़ेसर (हिन्दी), क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन
ईमेल: vmtripathi@gdufs.edu.cn
मोबाइल: +86- 18666279640 (China), +91-9958550683 (India)

पुराने कैलेण्डर के अनुसार साल का अंत बहुत ही सुखद लग रहा है, क्या गाँव क्या शहर, कोई भी इस सुखद अंत से अछूता नहीं था। नए साल के स्वागत में चारों ओर पटाखे छोड़े जा रहे हैं, और आकाश पटाखों के बारूद के धुएँ से भर गया है, मानों आकाश भी नए साल के आने की कहानी कह रहा हो। आकाश में बिजली चमक रही थी, चारों ओर से पटाखों की आवाज़ें आ रही थी जो रसोईघर के देवता के प्रस्थान की ख़ुशी मना रहे थे और इसी बीच एक दिन मैं अपने पैतृक गाँव लुचन पहूँचा। यद्यपि मैं इसे अपना पैतृक गाँव कहता हूँ, लेकिन अभी तक मैंने यहाँ पर अपना घर नहीं बनवाया है। यहाँ आने पर मैं अपने लू चाचा के यहाँ ठहरता हूँ, जिन्हें मैं प्यार से छोटे चाचा कहकर बुलाता हूँ, जो मेरे ही खानदान के हैं।

अगले दिन सुबह मैं अपने पुराने मित्रों और खानदान के लोगों से मिलने निकला, गाँव और गाँव के मित्रों में मुझे कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखा, बस लोग पहले से थोड़े बूढ़े हो गए थे, लेकिन प्रत्येक घरों में "बलिदान " की तैयारी हो रही थी। यह लुचन गाँव में वर्ष के सबसे अच्छे अंत का समारोह था, जब सभी लोग श्रद्धा के साथ "भाग्य के देवता "का स्वागत करते हैं और आने वाले वर्ष में सौभाग्य की कामना करते है। मुर्गी, बतख, सूअर काटे जा रहे थे, उन्हें धोते समय महिलाओं के हाथ खून से लाल हो गए थे। मांस पक जाने के बाद उसमें चॉपस्टिक (यह लकड़ी का बना होता है जिससे चीनी लोग खाना खाते है।) को खड़ा कर के रख दिया जाता है, यह "भेंट " कहलाता है। यह भेंट भोर में देवता को अर्पित किया जाता है, "भेंट " के चारों ओर धूप एवं मोमबतियाँ जला कर लोग श्रद्धापूर्वक "भाग्य के देवता " को भेंट ग्रहण करने के लिए आमंत्रित करते है। केवल पुरुष ही बलि को चढ़ाते है, उसके बाद पटाखे चलाने का दौर शुरू होता है, ऐसा हर परिवार में होता है बशर्ते वे "भेंट " और पठाखे खरीद सकें, और इस वर्ष भी लुचन गाँव के लोगों ने स्वाभाविक रूप से अपने पुराने रीती – रिवाज का पालन किया।

चारों ओर लोग नववर्ष की स्वागत में लगे थे, महिलाओं के हाथों में गोदना गोदवाए जा रहे थे। मेरी छोटी चाची भी नए साल की तैयारी में लगी थी, लेकिन चाची के घर में उनकी नौकरानी श्यांगलीन बहू (श्यांगलीन की पत्नी) को नहीं देखकर उसके द्वारा पूछे गए तीनों प्रश्न मेरे मनोमष्तिष्क में कौंध गए; जो उसने पिछली बार मेरे गाँव आने पर पूछा था। उसका स्याह बुझा

हुआ चेहरा, सफ़ेद बाल मुझे बरबस याद आ गए। मुझे देखते ही उसने कहा-

"अच्छा ! तुम वापस आ गए ?"

"हाँ !"

"यह बहुत अच्छा है। आप विद्वान् हैं, बहुत यात्रा भी कर चुके हैं, बहुत कुछ देखा सुना भी है। मैं बस आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ। " यह कहते कहते उसकी बुझी हुई आँखें अचानक चमक उठी।

मैंने कभी नहीं सोचा था कि वह मुझसे इस तरह बात करेगी, मैं वहीं जड़वत् खड़ा रहा।

वह दो कदम चलकर मेरे और नज़दीक आई और बहुत ही आत्मविश्वास के साथ धीरे से पूछा-"क्या आत्मा का अस्तित्व होता है ? क्या मरने के बाद आदमी भूत बन जाता है ? "

यह सुनकर मेरे पूरे शरीर में लहर सी दौड़ गई। उसने जिस तरह से मेरी आँखों से आँखों से मिला के मुझसे प्रश्न पूछा था, मेरी रीढ़ की हड्डी भी काँप गई थी। मैं उस एक छोटे बच्चे से भी अधिक घबड़ा गया था जो पहले दिन स्कूल जाता है और शिक्षक उससे अप्रत्याशित प्रश्न पूछ बैठते हैं। आत्मा का अस्तित्व होता है कि नहीं, मुझे इसकी चिंता नहीं थी, लेकिन श्यांगलीन बहू के लिए इसका सही उत्तर क्या हो सकता है, मुझे बस इस बात की चिंता थी। एक क्षण रुकते हुए, लड़खड़ाते हुए बोला – आत्मा का अस्तित्व हो सकता है। इसका मतलब, तब तो नरक भी होना चाहिए ?

श्यांगलीन बहू का यह दूसरा प्रश्न था जो उसने मुझपर तीर की तरह छोड़ा था।

क्या...? नरक....?

तार्किक रूप से कहा जाए तो नरक का अस्तित्व होना भी चाहिए लेकिन कोई निश्चित नहीं है, कौन इतना ध्यान देता है ?

मैंने जैसे तैसे उसके प्रश्नों का उत्तर पूरा किया।

तब तो मरने के बाद घर के सारे सदस्य एक बार फिर से मिलेंगे ? तीसरा प्रश्न उछाला था श्यांगलीन बहू ने। मैंने महसूस किया कि वास्तव में मैं पूर्ण रूप से मूर्ख हूँ, क्योंकि मेरा संकोच और मेरे चेहरे के भाव उसके तीनों प्रश्नों से मेल नहीं खाए था। जल्दी-जल्दी में मैंने जो भयानक बातें श्यांगलीन बहू से कह दी

थीं, उन बातों से वापस मुड़ने के विचार में पड़ा ....।

ऐसी स्थिति में ......

वास्तव में .....मैं निश्चित नहीं हूँ।

सही कहो तो मैं पूरी तरह निश्चित नहीं हूँ कि भूत होते हैं या नहीं ....।

श्यांगलीन बहू फिर कोई प्रश्न पूछे, इसके पहले मैं वहाँ से भाग निकला। एकांत में विचार करने पर मैंने पाया कि बहुत ही भयानक उत्तर दे दिया है। निश्चित रूप से इस समय उसके मष्तिस्क में उथल-पुथल मची होगी जबकि इस समय सभी लोग नए साल के उत्सव को मनाने में व्यस्त है। यह आने वाली घटना का पूर्वाभ्यास तो नहीं? यदि श्यांगलीन बहू के मन में कोई दूसरा विचार आ रहा हो, और यदि परिणाम कुछ ख़राब हुआ तो आंशिक रूप से उस घटना में मेरी भी ज़िम्मेदारी होगी।

मुझे अपने आप पर हँसी आई, मैं उस विषय के बारे में चिंतित हूँ जिसका कोई गंभीर महत्त्व ही नहीं है। वैसे भी विद्वान लोग मुझे संशयवादी कहते है।

"मैं निश्चित नहीं हूँ।" यह बहुत ही उपयोगी वाक्य है।

अगले दिन चाचा के कमरे से तेज़-तेज़ आवाज़ आ रही थी, लग रहा था कि किसी गंभीर बात पर बहस हो रही थी, लेकिन जल्दी ही बहस समाप्त हो गई। मैंने महसूस किया कि चाचा –चाची के बीच बहस का कारण मैं भी हो सकता हूँ। थोड़ा इंतजार किया चाची के निकलने का लेकिन निराशा ही हाथ लगी। अंततः अन्दर जाकर मैं चाची से पूछ बैठा कि छोटे चाचा किस बात पर इतने ग़ुस्सा थे ?

"श्यांगलीन बहू।" जबाब मिला।

"क्यों?"

"वह चली गई ......।"

'क्या, अब वह नहीं रही?"

कुछ देर के लिए मेरे दिल की धड़कन बंद हो गई। पूछा – कब मरी ? कल रात या आज सुबह ?

"निश्चित नहीं हूँ।"

"कैसे मरी?"

"बिना शक ...... ग़रीबी के कारण।"

"आने वाली घटना का पूर्वाभ्यास" सच हो गया। श्यांगलीन बहू की मृत्यु भयंकर ग़रीबी अर्थात् पैसों के अभाव में हुई, यह सोच कर मैं अपने आप में जला जा रहा था। मेरा सर्वोदयी उत्तर "मैं निश्चित नहीं हूँ", मेरे हृदय को जलाये जा रहा था। इसमें मैं अपना भी अपराध महसूस कर रहा था।

अगले दिन मैं वहाँ से लौट आया, मेरे छोटे चाचा ने भी रुकने के लिए दबाब नहीं डाला। जाड़े का दिन था, दिन छोटा ही हो रहा था, चारों ओर बर्फ़बारी हो रही थी, समूचा शहर लिफ़ाफे की तरह बंद था। दिए जलते हुए घरों से रुक-रुक के हल्ला- गुल्ला की आवाज़ आ रही थी, लेकिन बाहर पूरी तरह शांत था। बाहर सिसक–सिसक कर बर्फ गिर रही थी, जो एक पतली परत का रूप धारण कर चुकी थी, यह किसी के भी अकेलेपन को बढ़ाने के लिए काफ़ी थी। मैं सोचने लगा उस अभागन, असहाय औरत के बारे में जिसका हाल कूड़े जैसा हुआ। जैसे किसी फटे हुए पुरानी गुड़िया से तंग आकर उसका मालिक कूड़े पर फेंककर अपने जीवन का आनंद उठाते हुए गुड़िया के लिए सोचे कि वह ठीक हो। और अंततः वो सर्वदा के लिए मृत्यु की गोद में सो गई। आत्मा का अस्तित्व होता है या नहीं, मैं नहीं जानता लेकिन हमारे संसार में हर एक बेकार अस्तित्व का अंत उसी तरह है जैसे उस वस्तु का बदलना जिसे लोग देखते-देखते थक गए हों।

श्यांगलीन बहू के जीवन का एक टुकड़ा

जिसे मैंने देखा और सुना था अब वह पूरा....।

वह लुचन गाँव की नहीं थी, जाड़े की एक सुबह, श्रीमती वेई श्यांगलीन बहु को लेकर छोटे चाचा के घर लेकर आईं थी, मेरी चाची को एक नौकरानी की ज़रूरत भी थी, श्रीमती वेई ने ही उसका परिचय मेरी चाची से कराया - यह श्यांगलीन बहु है जो मेरे मायके में मेरी पड़ोसी है, इनके पति अब इस दुनिया में नहीं हैं, यह काम ढूँढ़ रही हैं। मेरे छोटे चाचा जो कन्फ़्यूशियस के विचारों को मानने वाले हैं, वे यह सुनकर आपे से बाहर हो गए। वे श्यांगलीन बहु को एक विधवा के रूप में अपने घर काम पर नहीं रखना चाहते थे; लेकिन चाची ने श्यांगलीन बहु के मज़बूत हाथ पैर, उसकी चुप्पी, उसकी नीचे झुकी हुई नज़र को देखा, जो एक अच्छी नौकरानी होने के सभी शर्तों को पूरा करता था। और इस प्रकार मेरी चाची ने छोटे चाचा के ग़ुस्से और अहसमति को दरकिनार करते हुए श्यांगलीन बहु को पाँच सौ रुपये प्रतिमाह पर घर के काम के लिए रख लिया।

हर कोई उसे श्यांगलीन की बहु के नाम से ही बुलाता था, कोई भी उसके वास्तविक नाम से उसे नहीं बुलाता था। श्यांगलीन बहु सुबह से लेकर शाम तक काम करती थी, बहुत पूछने पर एक या दो शब्दों में उत्तर देती थी। बहुत दिनों के पूछने पर पता चला कि उसकी सास बहुत ही कर्कशा है, दस साल का उसका एक देवर भी है, उसका पति जो उससे लगभग दस साल छोटा था, लकड़ी काटने का काम करता था। गाँव के लोग आपस में बात करते थे कि श्यांगलीन बहु एक बहुत मेहनत करने वाले मर्द से भी अधिक काम करती है। नए साल का त्यौहार बीतने के बाद, एक दिन वह चावल धोने नदी के किनारे गई, वापस आने पर वह कुछ चिंतित सी दिख रही थी, क्योंकि नदी के उस तट पर एक आदमी बहुत तेज़-तेज़ क़दमों से चहलकदमी कर रहा था, जो उसके देवर जैसा लग रहा था, हो सकता है वह मेरी खोज में आया हो। इस घटना को जानने के बाद छोटे चाचा बिफर पड़े कि "वह निश्चित ही यहाँ से भाग जाना चाहती है।"

इस घटना को बीते लगभग एक महिना हो

चुका था, और सब कोई इसे भूल भी चुका था, कि एक दिन दोपहर में श्रीमती वेई अचानक एक औरत के साथ मेरे चाचा के घर आई, उस औरत का परिचय श्यांगलीन बहू की सास के रूप में चाची से कराया और कहा कि यह अपनी बहू को वापस ले जाना चाहती हैं, क्योंकि अभी वसंत का शुरूआती महिना चल रहा जो बहुत व्यस्तता भरा होता है और घर में इनका कोई हाथ बटाने वाला भी नहीं है।

"अगर उसकी सास उसे ले जाना चाहती है तो इसमें कुछ कहने कि क्या आवश्यकता है।" छोटे चाचा ने अपनी भड़ास निकाली। चाची ने उसे 1750 रुपये नगद और श्यांगलीन बहू के कपड़े उसे दे दिए, जिसे लेकर वह चली गई।

"ओह ! चावल ...।" चाची चिल्लाई।

"क्या श्यांगलीन बहू चावल धोने नहीं गई है ? "

घर में कठवत (चावल धोने की टोकरी) की खोज होने लगी, रसोईघर से लेकर बरामदा तक चाची ने सारा घर छान मारा लेकिन कठवत कहीं नहीं मिला, अंत में छोटे चाचा ने नदी पर जाकर देखने के लिए कहा। नदी के किनारे जाने पर चाची को ज़मीन पर गिरा हुआ कठवत मिला, उसमें के चावल वहीं नीचे बिखरे पड़े थे। नदी के किनारे के कुछ लोगों ने बताया कि एक सफ़ेद ढँका हुआ नाव सुबह से ही किनारे पर लगा था, लेकिन उसके अन्दर कौन-कौन था यह नहीं दिखा, और जैसे ही श्यांगलीन बहू चावल धोने के लिए झुकी तभी दो आदमी पहाड़ की तरफ से आए और उसे ज़बरदस्ती नाव में बैठा कर लेते गए। उसने चिल्लाना चाहा लेकिन जल्दी ही वह चुप हो गई, क्योंकि तभी दो औरतें नाव में चढ़ीं जिसमें से एक अपरिचित महिला थीं और एक श्रीमती वेई थी।

शाम में श्रीमति वेई चाचा के यहाँ पहूँची, उन्हें देखते ही छोटे चाचा अपने आपे से बाहर हो गए-

"तुमने दुबारा अपना चेहरा दिखाने की हिम्मत कैसे की ? पहले तुमने उसे काम पर लगाया और फिर उसे भगा के ले गई, आख़िर तुम दिखाना क्या चाहती हो ?"

"हे भगवान् ! मुझे क्षमा करें श्रीमान लू, मुझे पता नहीं था कि वह घर से बिना बताए ही आई है, कृपया मेरी स्थिति को समझें, मैं भाग्यशाली हूँ कि आप बहुत बढ़िया व्यक्ति हैं और मुझे क्षमा करेंगे।"

मेरी चाची अभी भी श्यांगलीन बहू को नहीं भूल पाई थी। अगले दिन श्रीमती वेई नववर्ष की शुभकामना देने चाचा के घर आईं। चाची से श्यांगलीन बहू के बारे में पूछे बिना रहा नहीं गया, और श्रीमती वेई से पूछा कि श्यांगलीन बहू कैसी है ? उसका नाम सुनते ही श्रीमती वेई एकदम से उछल पड़ी - "श्यांगलीन बहू ....! उसका भाग्य फिर से जाग उठा है, उसकी सास ने उसकी दुबारा शादी कर दी है, अब वह बहुत खुश है।"

"कितनी महान् सास है उसकी " चाची ने कहा।

महान् ....और उसकी सास ?

उसकी सास वास्तव में बहुत महान् है, उसने श्यांगलीन बहू की शादी पहाड़ी इलाके में कर दी; जहाँ कोई अपनी लड़की नहीं देना चाहता और बदले में उसकी सास ने अस्सी हज़ार रुपये नगद लिये। श्यांगलीन बहू को बेच कर उसकी सास ने अपने छोटे बेटे के लिए पचास हज़ार में दुल्हन ख़रीदी, दस हज़ार रुपये शादी में खर्च किये और बीस हज़ार रुपये अभी भी उसके हाथ में है। वह बहुत ही चालक औरत है, श्रीमती वेई ने बताया। लेकिन श्यांगलीन बहू की सहमति

..........? उसकी इच्छा जानने का कोई प्रश्न ही नहीं था श्रीमती लू।

एक दिन सुबह-सुबह मेरे छोटे चाचा के दरवाज़े की घंटी बजी, चाची ने दरवाज़ा खोला। दरवाज़े पर श्रीमती वेई श्यांगलीन बहू के साथ खड़ी थी। श्यांगलीन बहु एक बार फिर अपना पति खो चुकी थी, लेकिन इस बार वह पति के साथ-साथ अपने छः माह के बच्चे को भी खो चुकी थी, जिसे भेड़िया उठा ले गया था, उसके देवर ने उसके घर पर कब्ज़ा कर उसे घर से निकाल दिया था। लू चाची ने महसूस किया कि वह अब पहले वाली श्यांगलीन बहू नहीं रही, उसके चेहरे पर हँसी की एक लकीर भी नहीं थी। उसका चेहरा मुखौटे की तरह मरा हुआ सा था। उसका शरीर और दिमाग़ दोनों ने काम करना छोड़ दिया था। अभी भी लोग उसे "श्यांगलीन बहू" के नाम से ही पुकारते थे। वह अपने बेटे को हमेशा याद करती।

"ओह, मैं सही में बेवकूफ थी। "अपने आप से कहती और आकाश की तरफ देखती रहती। नया साल आने वाला था, लू चाचा ने कुछ दिनों के लिए एक पुरुष नौकर को रख लिया था। एक दिन जिसका नाम अमाह लियु था, उसने श्यांगलीन बहू से कहा कि तुमने दो – दो शादियाँ की है, मरने के बाद जब तुम नरक में जाओगी तो तुम्हारे दोनों पति के भूत तुम्हें पाने के लिए आपस में लड़ना शुरू कर देंगे। तब यमराज तुम्हारे शरीर को दो भाग में काट देंगे, और आधा – आधा शरीर तुम्हारे दोनों पतियों में बाँट देंगे। मैं सोचता हूँ कि यह बहुत ही..? वह बहुत डर गई।

बढ़िया होगा कि तुम रक्षा के देवता के मंदिर में जाओ और एक "प्रवेश द्वार" खरीदकर दान कर दो। श्यांगलीन बहू ने कुछ कहा तो नहीं लेकिन इस सलाह को हृदय से लगा लिया। अगले दिन वह रक्षा के देवता के मंदिर पहूँची और दान करने के लिए एक "प्रवेश द्वार" खरीदने की बात पुजारी से कहा। पहले तो पुजारी ने उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया, लेकिन जब श्यांगलीन बहू निराश होकर रोने लगी तो अंतत पुजारी ने अनिच्छापूर्वक हामी भरी। पुजारी जी ने प्रवेशद्वार का शुल्क बारह हज़ार रुपये बताया।

अगले दिन उसकी आँखे उदास थी, उसका चेहरा स्याह हो चुका था। छः माह में ही उसके बाल भूरे हो चुके थे और उसकी स्मरण शक्ति ख़त्म हो चुकी थी। वह अक्सर चावल धोने के लिए जाना भूल जाती थी, खाली समय में वह मूर्खों की तरह चुपचाप बैठी रहती थी। उसमें कोई सकारात्मक परिवर्तन होता हुआ नहीं दिख रहा था। उसकी समझ वापस आएगी इसकी भी कोई आशा दिखाई नहीं दे रही थी। इसलिए चाचा और चाची ने मिलकर निर्णय लिया कि उसे श्रीमती वेई के पास जाने के लिए कह दिया जाए। चाचा और चाची ने उससे क्या कहा नहीं पता, उस समय मैं वहीं पर था।

क्या उन लोगों का ऐसा करना आवश्यक था ?उसने मेरे चाचा का घर छोड़ने के बाद भीख माँगना शुरू किया या पहले श्रीमती वेई के घर पहुँची और उसके बाद भिखारी बनी, मैं नहीं जानता।

नज़दीक और दूर से आते हुए पटाखों की आवाज़ों से मेरी नींद खुल गई। लालटेन की मद्धिम पीली रोशनी और पटाखों के शोर से लग रहा था कि मेरे छोटे चाचा के यहाँ नववर्ष की बलि दी जा चुकी है। लग रहा था कि पौ फटने वाली है। इधर-उधर की आवाज़ें सुनते हुए मैंने दूर पास से आती हुई अंतहीन पटाखों की आवाज़ें सुनी, ऐसा लग रहा था कि पूरा शहर शोर के घने बादलों में बंद सा हो गया है और बर्फ के फुहारों से नहा गया है। इन सब से मैं आराम महसूस कर रहा था, और मुझे ऐसा लग रहा था कि सभी बातें रात से लेकर अब तक मेरे मनोमस्तिष्क में चल रही थीं, वह इस नए साल के खुशनुमा वातावरण में खो गई हैं और मैं अपने आप को अपेक्षाकृत तरोताज़ा महसूस कर रहा था। मैंने बस यहीं महसूस किया कि स्वर्ग के देवदूत नए साल के बलिदान को स्वीकार कर रहे हैं और ख़ुशी में आकाश में झूम रहे हैं तथा लुचन गाँव के लोगों को खुशहाल जीवन का आशीर्वाद दे रहे हैं।

000

लघुकथा

मल भेद

सुभाष चंद्र लखेड़ा

उसका जन्म तथाकथित वर्ण व्यवस्था के अनुसार भारत में जिस परिवार में हुआ था, उसमें सफाई कर्मियों के काम को बेहद घटिया माना जाता था। फलस्वरूप, वह मानव मल से निजात दिलाने वाले लोगों को मन ही मन हमेशा हेय दृष्टि से देखता रहा।

बहरहाल, जब वह वयस्क हुआ तो उसे नौकरी के सिलसिले में लंदन आना पड़ा। बाद में वह स्थाई रूप से यहीं बस गया। दो वर्ष पहले उसने पत्नी के कहने पर लैब्राडोर नस्ल का एक कुत्ता ख़रीदा। तब से वह अपने इस प्रिय कुत्ते ब्रेटा को नियमित रूप से सुबह-शाम अपनी कॉलोनी की पटरियों पर दो वक्त घुमाने ले जाता है। लंदन के निवासियों की परंपरा का पालन करते हुए वह सैर के दौरान ब्रेटा द्वारा त्यागे मल को बड़ी सफाई से प्लास्टिक की थैली से उठाकर उन डिब्बों के हवाले किया करता है जो इस हेतु उस कॉलोनी की पटरियों पर जगह-जगह लगे हुए हैं। ताज्जुब इस बात का है कि कुत्ते का मल उठाना उसे कभी घटिया नहीं लगा।

000

सुभाष चंद्र लखेड़ा

सी-180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर - 7, प्लाट नंबर - 17, द्वारका, नई दिल्ली - 110075

बिना धूप के साये

पंजाबी कहानी

लेखक : तृप्ता के. सिंह

अनुवाद : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

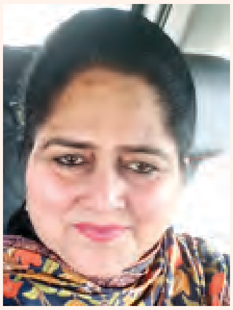

पंजाबी की जानी-मानी कहानीकार। जिन्होंने अपने विभिन्न विषयों और अलग अंदाज़ से कुछ ही समय में पंजाबी कहानी में अपना अलग स्थान निश्चित किया।

तृप्ता के. सिंह

233, गुरू नानक एवेन्यू, होशियारपुर - 146001

मोबाइल: 9888554837

डॉ.जसविन्दर कौर बिन्द्रा

आर-142, फ़र्स्ट फ़्लोर, ग्रेटर कैलाश-, नई दिल्ली-48

मोबाइल- 9868182835

ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

सुधीर की नींद अभी पूरी तरह से खुली नहीं थी कि उसे बाथरूम में कै करने की आवाज़ सुनाई दी। उसने बैड की दूसरी ओर नज़र घुमा कर देखा, वसुधा वहाँ नहीं थी। सुधीर एकदम से उठकर, पैरों में स्लीपर फँसा कर बाथरूम की ओर भागा। देखा, वसुधा मुँह पोंछते हुए बाथरूम से बाहर निकल रही थी।

'क्या हुआ स्वीटी ?' सुधीर ने परेशान होकर पूछा।

'कुछ नहीं, बस यूँ ही दिल खराब होने लगा, फिर कै सी आने लगी।'

'कल कुछ उल्टा-सीधा खाया होगा।'

'नहीं ऐसा कुछ खाया तो नहीं, बस रोटी-सब्ज़ी ही खाई थी।'

'चलो, तुम लेट जाओ, मैं चाय लेकर आता हूँ।'

चाय पी कर वसुधा और सुधीर अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गए। सुधीर ऑफ़िस जाने के लिए तैयार होने लगा और वसुधा नाश्ते की तैयारी करने लगी। दोनों ने नाश्ता किया और वसुधा कॉलेज जाने के लिए तैयार हो गई। वसुधा का कॉलेज सुधीर के ऑफ़िस के रास्ते में ही पड़ता था। वह सुबह वसुधा को वहाँ छोड़ कर, अपने ऑफ़िस की ओर बढ़ जाता। दोपहर में वसुधा आटो द्वारा घर लौट आती थी। सुधीर के लौटने तक वह घर के छोटे-मोटे काम खत्म करके आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ती, एक अलग ही दुनिया में भी विचरती। फालतू का घूमना-फिरना या अड़ोस-पड़ोस में बैठ कर गप्पबाज़ी करने का वसुधा को कोई शौक नहीं था। वह अधिकतर अकेले रहना पसंद करती थी।

अगली सुबह भी सुधीर की आँख वसुधा की कै की आवाज़ से ही खुली। बाथरूम से पलट कर वसुधा निढ़ाल सी बैड पर आ लेटी। सुधीर ने धीरे से वसुधा के माथे पर हाथ फिराया, लेकिन वह आँखें मूँद वैसे ही पड़ी रही।

'इस उम्र में बदहज़मी, गैस, खट्टे डकार एक आम बात है। आज शाम को कैमिस्ट से कोई दवा या चूरन लेता आऊँगा।' सोचते हुए सुधीर चाय बनाने के लिए रसोई में चला गया।

शाम को उसने चूरन की एक शीशी लाकर वसुधा को दी, जिसे खाना खाने के बाद उसे लेना था। स्वयं वह अख़बार के पन्ने पलटने लगा।

वसुधा की उल्टियों का सिलसिला जब एक सप्ताह तक भी न रुका, तब सुधीर को चिंता सताने लगी।

'आज शाम को किसी डॉक्टर के पास ले जाना होगा स्वीटी को।' सोचते हुए सुधीर ऑफ़िस के लिए तैयार होने लगा।

अचानक उस की निगाह सामने पड़ी चूरन की शीशी पर पड़ी तो देखा, उसकी सील भी नहीं खोली गई थी। चूरन स्वीटी ने खाया नहीं, आराम कैसे आएगा....।"

शीशी उठा वसुधा के पास गया और शीशी दिखाते हुए उसे प्रश्नसूचक निगाह से देखा। वसुधा ने शीशी उसके हाथ से ले ली।

'बैठो सुधीर ! मुझे आपसे एक ज़रूरी बात करनी है।'

'हाँ बोलो !' वसुधा का गंभीर चेहरा देख कर वह थोड़ा परेशान हो गया।

'मुझे कुछ नहीं हुआ। मुझे कोई दवा नहीं खानी।' वसुधा के चेहरे से सुधीर कुछ समझ नहीं पाया।

'क्यों ? तुम्हें अपनी सेहत का बिल्कुल ध्यान नहीं ?'

'ध्यान है, तभी तो कह रही हूँ। ऐसी हालत में कोई दवा नहीं लेनी चाहिए। ख़ास कर, शुरूआती महीनों में।' वसुधा के चेहरे पर शर्म मिली मुस्कराहट खेलने लगी।

'कैसी हालत में...?' सुधीर अभी भी कुछ समझ नहीं पाया।

'मैं माँ बनने वाली हूँ।' वसुधा ने शर्माते हुए गर्दन झुका ली।

'क्या ?' वसुधा की बात सुन कर एक बार तो सुधीर के शरीर में खुशी की लहर दौड़ गई लेकिन अगले ही पल उसकी यह खुशी काफ़ूर हो गई, जब सुधीर ने नज़रें झुकाए वसुधा की ओर गौर से देखा। वसुधा के सिर पर चाँदी की तारें चमक रही थी। माथे पर रेखाएँ और ठोड़ी के नीचे 'डबल चिन्न' नज़र आ रही थी।

सुधीर को ध्यान आया, पिछले एक-दो महीनों से वसुधा के पीरिडयस् डिस्टर्ब थे, परन्तु उम्र के इस पड़ाव पर पहूँच कर ऐसा होना स्वाभाविक है। यह सब सोच कर सुधीर चुप बैठा रहा।

स्वीटी की भीतरी औरत के मन के किसी कोने में माँ बनने की इच्छा के बारे में सोचकर सुधीर एकदम वसुधा की बात को काट नहीं पाया।

'चलो, हम डॉक्टर से मिल कर मश्वरा कर लेते हैं।' सुधीर ने वसुधा को अपने साथ सटाते हुए प्रेम से कहा।

'नहीं, अभी इतनी जल्दी किसी डॉक्टर की आवश्यकता नहीं।' वसुधा धीरे से उठ कर तैयार होने लगी।

सुधीर उसी प्रकार बैठे हुए वसुधा के बारे में सोचता रहा। पिछले कुछ समय में उसके व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों की ओर सुधीर का ध्यान गया। वह शुरू से ही कम बोलती थी परन्तु कुछ समय से ज़रूरत की बात करती थी। उसका स्वभाव बिल्कुल भी चंचल नहीं रहा था। कभी-कभी वह अपने आपसे बतियाने लगती थी। क्या बातें करती थी, इस बारे में सुधीर को मालूम नहीं था। एकाध बार सुधीर ने पूछा तो उसने हँस कर टाल दिया। वसुधा की कोई निकट सहेली नहीं थी। कॉलेज के सहकर्मियों के साथ भी उसका वास्ता केवल बस और कॉलेज तक सीमित था।

सोचते हुए सुधीर बीस वर्ष पीछे पहूँच गया। तब सुधीर और वसुधा एक-दूसरे के प्रेम में पागल थे। एक-दूसरे में खोए, दुनिया से बेपरवाह थे। दिन रात एक-दूसरे के सपनों में खोए रहते। सपने आख़िर टूटते ही हैं। उन दोनों के सपने तब चूर-चूर हो गए, जब वसुधा के पापा ने उन्हें यथार्थ के धरातल पर ला पटका। जात-पात और अमीरी-ग़रीबी की दूरी ने दोनों को दूर करने में अहम भूमिका निभाई।

''ठीक है पापा जी। आपकी बेटी हूँ, आपका मुझ पर पूरा अधिकार है लेकिन आज के बाद आप मुझसे शादी के बारे में कभी नहीं पूछेंगे।'' वसुधा ने अपना दो टूक फ़ैसला सुना दिया और अपने फ़ैसले पर अडिग रही।

समय के बहाव में बहुत कुछ पीछे छूटने लगा। समय अपनी गति से आगे बढ़ता रहा। सुधीर को काफी बाद में जाकर सरकारी नौकरी मिल गई और वसुधा भी कॉलेज में लेक्चरर लग गई। दोनों कभी-कभी किसी कॉफी हाऊस, पार्क या रेस्तरां में मिलने लगे। सुधीर की भी शादी की इच्छा अब बाकी नहीं रही थी। उसकी माँ पुत्र के सिर पर सेहरा देखने की हसरत लिए इस जहान से चली गई। वसुधा की एक बहन अमेरिका में बस गई थी और माँ का लंबी बीमारी के बाद देहांत हो गया। जब तक वसुधा के पापा जीवित रहे, वसुधा आज्ञाकारी बेटी के कर्त्तव्य पूरे करती रही। पापा के इस दुनिया से जाने तक वसुधा की उम्र चालीस के पार हो चुकी थी। अब सारी दुनिया में दोनों का अपना कहने वाला कोई नहीं रहा था।

आपसी सहमति से दोनों मंदिर में जाकर परिण्य-सूत्र में बँध गए। जो संबंध कई वर्श पहले जुड़ जाना चाहिए था, वह बहुत बाद में हुआ। लेकिन दोनों की ज़िंदगी थोड़ी-थोड़ी महकने लगी।

***

'ऑफ़िस नहीं जाना क्या आज ?' वसुधा साड़ी बाँधते हुए सामने आ खड़ी हुई। सुधीर एकटक वसुधा के पेट की ओर देखने लगा।

'उठो ना, देर हो रही है।' वसुधा के कहने पर सुधीर अनमने भाव से उठ खड़ा हुआ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। वसुधा अपने खाने-पीने का खास ख़याल रखने लगी। रोज़ सुबह उठ कर रात के भीगे बादाम खाती। फल, सब्ज़ियाँ, दूध-दही सब कुछ थोड़ा-थोड़ा खाती रहती। सुधीर ने कई बार वसुधा को किसी डॉक्टर की सलाह लेने के लिए कहा, परन्तु वसुधा ने माना नहीं। उसका यही जवाब रहता, अभी इसकी कोई ज़रूरत नहीं।

वसुधा के पेट की ओर देखते हुए सुधीर को वह फूला-फूला लगता। उसका बढ़ा हुआ पेट देखकर सुधीर के मन का सूना कोना टहकने लगा।

'देखो स्वीटी, ऐसी हालत में डॉक्टरी चैकअप करवाना आवश्यक है। कई प्रकार के टॉनिक और दवा-इंजेक्शन आने वाले बच्चे के लिए अत्यन्त ज़रूरी होते हैं। इसके लिए डॉक्टर के पास जाना ही होगा।' सुधीर के बहुत समझाने-बुझाने के बाद वसुधा डॉक्टर के पास जाने के लिए तैयार हो गई।

सुधीर उसे शहर की जानी- मानी गाइनोक्लोजिस्ट के पास चैकअप के लिए लाया।

पर्दे के पीछे लगे इग्ज़ैमिनेशन टेबल पर लिटा कर डॉक्टर ने वसुधा को बहुत गंभीरता से चैक किया।

'कौन सा महीना लगा है तुम्हें ?' डॉक्टर ने प्यार से पूछा।

'चार पूरे होकर पाँचवाँ लग गया है। मेरा बच्चा ठीक है डॉक्टर साहिब ? आपको समय के बारे में कुछ भ्रम हो रहा है क्या ? ' वसुधा ने चिंतित होकर पूछा।

'नहीं, नहीं....ऐसी कोई बात नहीं है। आप आराम से लेटे रहे।' डॉक्टर कितनी देर तक स्टैथो से वसुधा के पेट की जाँच करती रही। फिर डॉक्टर ने दोनों हाथों से उसके पेट का मुआयना किया।

'आपको कोई तकलीफ तो नहीं ?' डॉक्टर ने वसुधा को अत्यन्त नम्रता से पूछा।

'नहीं, कोई ख़ास नहीं। शुरू के महीनों में उल्टी इत्यादि आती रही, लेकिन अब ठीक है। बस कभी-कभी नीचे की ओर भारीपन लगता है। कभी लोअर बैक और लोअर एब्डोमेन में हल्का सा दर्द होता है लेकिन मैं इन बातों की अधिक परवाह नहीं करती। प्रेग्नेंसी में तो ये बातें होना नार्मल है। है न डॉक्टर साहब ?'' वसुधा ने डॉक्टर की राय जानने की कोशिश

की।

"हाँ...हाँ...। आप धीरे से उठ कर बाहर आ जाए।" डॉक्टर वाशबेसन पर हाथ धोकर अपनी कुर्सी पर आ बैठी। उसके पीछे ही वसुधा भी अपनी साड़ी को सँवारते हुए सुधीर की बगल में आ बैठी।

डॉक्टर ने बेल का बटन दबाया। एक पतली सी नर्स कमरे में आई। डॉक्टर ने एक पर्ची पर कुछ लिख कर उसे थमाते हुए, वसुधा को नर्स के साथ जाने को कहा। वसुधा के कमरे से बाहर जाने पर डॉक्टर ने सुधीर की ओर देखा।

'आपका नाम क्या है....। वसुधा से आपका क्या रिश्ता है?'

'जी मेरा नाम सुधीर है और मैं वसुधा का पति हूँ।'

'मि. सुधीर...मेरी बात आप बहुत ध्यान से और संयम से सुने।'

'जी डॉक्टर साहब....।'

'आपकी पत्नी वसुधा वास्तव में प्रेग्नेंट नहीं है।' डॉक्टर ने स्पष्टता से कहा।

सुधीर को पहले ही इस बात का संशय था परन्तु भ्रम टूटने से उसे दर्द महसूस हुआ। अधिक दुख उसे वसुधा के बारे में हुआ।

'मैं फिर भी कन्फर्म करने के लिए स्कैनिंग कर लेती हूँ।'

'जी।' सुधीर बामुश्किल कह पाया। डॉक्टर उठ कर भीतरी कमरे में चली गई। पन्द्रह मिनट के बाद वह वापस लौटी। वसुधा अभी भी स्कैनिंग रूम में थी।

सुधीर ने एक उम्मीद से डॉक्टर की ओर देखा लेकिन डॉक्टर के सपाट से चेहरे से कोई अनुमान नहीं लगा पाया या लगाना नहीं चाहता था।

'मेरा शक ठीक था मि. सुधीर, आपकी पत्नी प्रेग्नेंट नहीं हैं। इनफैक्ट यह सूडो प्रेग्नेंसी का केस है।'

'सूडो प्रैग्नैंसी?' सुधीर ने हैरानी से दुहराया। उसने पहले इस शब्द को कभी नहीं सुना था।

'जी, सूडो प्रेग्नेंसी या फॉल्स प्रेग्नेंसी। इस प्रकार के केस में औरतें स्वयं को प्रेग्नेंट समझने लगती हैं। वह प्रेग्नेंट औरत के सभी सिम्टम्स महसूस करने लगती हैं। यहाँ तक की उसका पेट बढ़ना, बच्चे का हिलना-डुलना, छोटी-मोटी तकलीफ आदि सभी महसूस करने लगती है, जो आम प्रेग्नेंट स्त्री के साथ होता है। ऐसे मरीज़ थोड़े साइकिक होते हैं। इन्हें सच का सामना करने से डर लगता है।' सुधीर गुमसुम होकर डॉक्टर की बातें सुन रहा था।

'ऐसे केस में कई औरतों को प्रसव पीड़ा भी महसूस होती है। ऐसे मरीज़ों को दवा से अधिक काउंसलिंग, प्यार और सहयोग की आवश्यकता होती है। उन्हें एकदम से इस अवस्था से बाहर नहीं निकाला जा सकता। ऐसा करने से मरीज़ कई बार वायलेंट हो जाते हैं। आपको बहुत धैर्य से काम लेना होगा।' डॉक्टर ने सारा केस सुधीर के सामने खोल कर रख दिया।

'कोर्ट रोड पर डॉक्टर स्वाति शर्मा का क्लीनिक है, वह बहुत अच्छी मनोचिकित्सक है। आप एक बार अपनी पत्नी को उन्हें दिखा दें।'

हैरान-परेशान सुधीर के लिए डॉक्टर की बातों पर एकदम से यकीन करना मुश्किल हो रहा था लेकिन यह सच था। आख़िर डॉक्टर झूठ क्यों बोलेगी।

डॉक्टर को धन्यवाद देते हुए, काउंटर पर जाकर उसने फीस अदा की और वसुधा को लेकर घर वापस लौट आया। सारे रास्ते वसुधा बच्चे से संबंधी बातें करती रही और सुधीर केवल हूँ-हाँ में उसे जवाब देता रहा।

दूसरे दिन अकेले ही सुधीर डॉक्टर स्वाति की क्लीनिक पर गया। उसने वसुधा की सारी केस हिस्ट्री डॉक्टर को बताई। डॉक्टर स्वाति ने ध्यान से सुधीर की बात सुनी और उसे भरोसा दिलाया कि वसुधा को कुछ दवाइयाँ दी जाएगी। उसकी नियमित काउंसलिंग होगी और धीरे-धीरे वसुधा नार्मल हो जाएगी, लेकिन इसमें कितना समय लगेगा, इस बारे में निश्चित तौर से कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक सप्ताह के पश्चात् सुधीर वसुधा को डॉक्टर स्वाति के पास यह कह कर लाया कि पहले वाली डॉक्टर शहर से बाहर गई है और वसुधा और बच्चे की बेहतरी के लिए दूसरे डॉक्टरके पास चैकअप करवाना ज़रूरी है।

पहले वसुधा मान नहीं रही थी परन्तु जब सुधीर ने कहा कि बच्चे का पिता होने के नाते उसका भी कुछ अधिकार है। तब वसुधा खुशी से मान गई।

डॉक्टर स्वाति ने वसुधा को एक अन्य कमरे में लिटा कर आधा घंटा सूक्ष्मता से उसका निरीक्षण किया। उससे बहुत सारी बातें पूछी। वसुधा के सभी जवाब उसके बच्चे पर ही केन्द्रित रहे। डॉक्टर ने इधर-उधर के छोटे-मोटे सवाल उससे किए। डॉक्टर के प्रश्नों से वसुधा उकताने लगी। वह वहाँ से जाना चाहने लगी। डॉक्टर ने उसकी इच्छा भाँपते हुए उसे कमरे से बाहर जाने को कहा। वसुधा ने चैन की साँस ली और बिना सुधीर की ओर देखे, क्लीनिक के बाहर जाकर खड़ी हो गई।

डॉक्टर ने सुधीर से पाँच-सात मिनट तक बात की। उसे कुछ बातें समझाई और कई हिदायतें भी दी।

घर आकर वसुधा ने स्पष्टता से कह दिया कि वह फिर कभी इस डॉक्टर के पास नहीं जाएगी। सुधीर ने प्यार से वसुधा को शांत किया।

वसुधा ने कॉलेज से लंबी छुट्टी ले ली। सुधीर, वसुधा का बहुत ख़याल रखता। घर और ऑफ़िस के चक्रव्यूह में फँसे सुधीर की हालत अत्यन्त दयनीय हो गई। फिर भी वह वसुधा को खुश रखने का प्रत्येक संभव यत्न करता। वसुधा अपनी स्थिति से निकलने की बजाय, उस स्थिति में और घुसती जा रही थी।

वह बेबी केयर संबंधी पत्रिकाएँ पढ़ती। बाज़ार से बच्चे के लिए कई प्रकार का सामान खरीद कर लाती। सुधीर से वसुधा की यह हालत देखी न जाती। वह अत्यंत धैर्य से काम ले रहा था। वह चाहता था कि वसुधा ठीक हो जाए। वसुधा को सँभालने और घर के कामकाज के लिए उसने तारा नामक एक औरत को रख लिया।

'सुनो सुधीर, हमारा बेटा होगा या बेटी?' एक दिन वसुधा ने बैड पर लेटे हुए सुधीर से पूछा।

'तुम्हें क्या चाहिए?'

'बेटा।'

'फिर जो स्वीटी को चाहिए, वही मुझे भी।' सुधीर ने प्रेम से वसुधा की ओर देखते हुए कहा।

'सुधीर हमारे बेटे का नाम क्या होगा ?' वसुधा बच्चों के नाम रखने वाली किताब के पन्ने पलटती हुई बोली।

'किताब तुम खुद देख रही हो और पूछ मुझ से रही हो।' सुधीर ने वसुधा के बालों में प्रेम से उँगलियाँ फिराते हुए कहा।

'पत्नी के नाम का पहला अक्षर और पति के नाम का पहला अक्षर जोड़ कर कई लोग अपने बच्चे का नाम रखते हैं। उस हिसाब से मैं सोच रही थी कि हम अपने बेटे का नाम वस्सू रखेंगे।'

'अच्छा नाम है न ?' वसुधा पता नहीं कहाँ खोई हुई थी। सुधीर ने उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, 'वाह क्या बात है ?'

वस्सू तेरा बेटा, मेरा बेटा...ऐसी बातें करते हुए दोनों पति-पत्नी किसी अलग ही दुनिया में खो गए।

कुछ समय पश्चात् सुधीर समझा-बुझाकर वसुधा को डॉक्टर स्वाति के पास चैकअप के लिए ले आया। डॉक्टर स्वाति ने वसुधा की काउंसलिंग आरंभ कर दी और उसे कुछ दवा भी दी। दो दिन दवा खाने के बाद से ही वसुधा को नींद आने लगी। वह सारा-सारा दिन सोती रहती। कब दिन चढ़ता, कब छिप जाता, उसे कोई होश न रहती। फिर एक दिन उसने दवा खाने से मना कर दिया। जिस दवा को सुधीर ताकत की दवा कह कर उसे खिलाता था, वह वसुधा को ज़हर दिखाई देने लगी। उसने चैकअप करवाने जाने से भी साफ मना कर दिया। सुधीर के लिए यह समय अत्यंत कष्टदायी हो गया।

दिन सप्ताह से सप्ताह महीनों में बदलने लगे। लेकिन वसुधा की स्थिति ज्यों की त्यों ही बनी रही। एक शाम वसुधा के पेट में बहुत ज़ोर से दर्द उठा। वह दर्द से तड़पने लगी।

'हाय...! मुझे लगता है कि मेरी डिलीवरी का समय निकट आ गया है। आप किसी डॉ. या नर्स को बुला ले, हाय...।' सुधीर के हाथ-पैर फूलने लगे। उसे समझ में न आया कि वह क्या करे। वसुधा को दिलासा देकर बैड पर लिटाया और तारा को बुलाने चला गया। तारा अपने घर के पास रहने वाली एक नर्स को बुला लाई। सुधीर और तारा ने नर्स को सारी स्थिति से अवगत करवाया। नर्स को अपना पारिश्रमिक जाता दिखाई देने लगा तो वह उनके घर जाने में आनाकानी करने लगी। लेकिन सुधीर के बार-बार विनती करने पर वह उनके साथ आ गई। एक पर्ची पर दो टीके लिख कर उसने सुधीर को थमाई। सुधीर ने तारा को कुछ पैसे देकर टीके लाने के लिए बाज़ार भेजा। वसुधा अभी भी बैड पर लेटी दर्द से कराह रही थी। नर्स से उसके पेट को टटोलने के बाद उसे आराम से लेटे रहने को कहा। परन्तु वसुधा प्रसव पीड़ा अनुसार बच्चे को जन्म देने का प्रयास करने लगी।

कुछ समय बाद तारा लौट आई। नर्स ने एक टीका भर कर वसुधा को लगाया। जिससे कुछ ही मिनट के बाद वसुधा टिक गई और फिर वह गहरी नींद में सो गई। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। तारा वहीं थी।

तड़के वसुधा को होश आया। उसने आस-पास सिर घुमा कर देखा, फिर धीरे से सुधीर को पुकारा। सुधीर, वसुधा की ओर बढ़ा और उसे लेटे रहने का इशारा किया।

'मेरा बच्चा कहाँ है ? वह ठीक तो है न ?' वसुधा ने बेचैनी से आस-पास नज़र घुमाते हुए कहा। तारा तुरन्त दूसरे कमरे से कपड़ों में लिपटा प्लास्टिक का एक गुड्डा ले आई, जिसे वह कल दवा लेते समय बाज़ार से खरीद लाई थी।

उसने गुड्डा वसुधा की गोदी में दे दिया। सुधीर ने घबरा कर तारा की ओर देखा। तारा ने आँखों से उसे चुप रहने का इशारा किया। उन्होंने देखा, वसुधा उस गुड्डे को बेतहाशा चूम रही थी।

सुधीर ने भी हालात से समझौता कर लिया। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे! वसुधा का साथ देने के अलावा उसके पास और कोई रास्ता नहीं था, क्योंकि वसुधा उसकी स्थिति समझने की हालत में नहीं थी। वह अपने बच्चे के साथ अलग ही दुनिया में मस्त थी।

एक दिन सुधीर ऑफ़िस से लौटा। वसुधा की गोद में कपड़ों में लिपटा गुड्डा था।

सुधीर ने आगे बढ़ कर उसे छूना चाहा तो वसुधा ने हाथ से इशारे से रोक दिया, 'शी...शी..वस्सू अभी सोया है। शौर ना करो।' वसुधा ने होंठों पर उँगली रखते हुए कहा।

बेचारा सुधीर ! उसे समझ में नहीं आया, वह क्या करे।

वसुधा वस्सू के सभी काम वैसे ही करती जैसे कोई माँ अपने बच्चे के लिए करती है। सुधीर को यह देख कर हैरानी होती कि कैसे वसुधा ने स्वयं को वस्सू की माँ के रूप में आत्मसात् कर लिया था।

''सुधीर, प्लीज़ वस्सू की फीडर बॉयल कर दो और देखना कम से कम बीस मिनट तक ज़रूर उबालना, वरना कीटाणु रह जाते हैं। वस्सू का पेट खराब हो जाएगा।'' सुधीर वसुधा की किसी बात को इंकार न करता। वह हरदम उसे खुश रखने का यत्न करता। उसे खुश देख कर वह स्वयं भी खुशी महसूस करता।

कभी-कभी सुधीर वसुधा को डॉक्टर के पास ले जाने के लिए मनाता। परन्तु हर बार वसुधा मना कर देती। वह सुधीर के साथ बाज़ार जाती, बच्चों के छोटे-छोटे कपड़े खरीद लाती। गुड्डे को उठा कर उसी प्रकार स्कूटर पर बैठती, जैसे सचमुच का बेटा हो। वह वस्सू के लिए खिलौने, मालिश के लिए तेल, साबुन, डायपर और पता नहीं क्या-क्या खरीद कर लाती। घर बच्चों की चीज़ों से भरता जा रहा था।

अब सुधीर, वसुधा को खुश करने के लिए खुद ही वस्सू के लिए कुछ न कुछ खरीद कर ले आता। वसुधा खुश हो जाती और कभी-कभी इतरा कर उसके द्वारा लाई चीज़ों में से नुक्स निकालने लगती।

'आप पुरुषों को मालूम भी है, बच्चों की स्किन कितनी सॉफ्ट होती है। उसके लिए कैसा मुलायम कपड़ा लेना चाहिए।'

सुधीर बस उसकी हाँ में हाँ मिलाता।

वस्सू की सेहत का ध्यान रखने का बहाना बना कर सुधीर वसुधा को एक बार फिर से डॉक्टर के पास ले गया। वस्सू के नाम पर वसुधा इंकार न कर सकी। वह एक बार फिर

से डॉक्टर स्वाति की क्लीनिक जाने लगी। डॉक्टर के कहे अनुसार सुधीर हर प्रकार से वसुधा को खुश रखने का प्रयास करता।

ऑफ़िस से लौटते समय सुधीर का स्कूटर अपने आप ही बच्चों के सामान से भरी दुकानें के आगे रुक जाता। कभी वह टैडी बीयर, कभी झूला, कभी खिलौने खरीद लाता। ये सब देख कर वसुधा अत्यंत प्रसन्न होती। वसुधा के लिए यह सब करते हुए सुधीर को संतोष महसूस होता।

वस्सू के नाम पर वसुधा अपना इलाज करवाने लगी। सुधीर उसे आने-बहाने से दवा भी खिला देता। जब वसुधा दवा खाकर सो जाती तो सुधीर उसकी छाती से लिपटाए वस्सू को धीरे से उठाता और उसे अपने सीने से लगाकर, कितनी ही देर तक उसे सहलाता रहता।

अचानक वसुधा की नींद खुलती तो वह वस्सू को सुधीर से झपट लेती। फिर वह सुधीर को वस्सू के लिए दूध गर्म करके लाने के लिए कहती।

सुधीर चुपचाप रसोई में जाता। दूध गर्म करता, उसे चैक करके दूध बोतल में डालता। उसे मालूम था, वसुधा दूध को चैक करेगी। वसुधा, वस्सू को अपनी गोदी में लिटा कर, बोतल उसके मुँह में लगाती और उसे साड़ी के पल्लू से ढँक देती। उसे पता न लगता, दूध बोतल से बह कर, उसके कपड़ों में समा जाता। जो बच जाता, उसे फेंक दिया जाता।

सुधीर नियमित वसुधा को डॉ. स्वाति के पास लेकर जाता। वसुधा और वस्सू का पूरा ध्यान रखता। ऑफ़िस से लौटते ही वह वसुधा से वस्सू के बारे में पूछता। उसने दूध पिया कि नहीं, कहीं ज़्यादा देर तक रोता न रहा हो। वसुधा खुशी-खुशी उसे सभी बातें बताती। सुधीर रोज़ ही कोई नई चीज़ वस्सू के लिए लेकर आता। फिर वसुधा को खुश करने के लिए बैड पर लेट कर वस्सू से बातें करता, खुद ही उन बातों के जवाब देता। वसुधा उन दोनों को खेलते देखकर खुश होती।

अब वह सुधीर से वस्सू को छीनती नहीं थी बल्कि अनेक बार वस्सू को सुधीर को थमा कर घर को कोई न कोई काम करने लगती। सुधीर खुद ही वस्सू को दूध पिला देता, फिर तिरछी निगाह से वसुधा की ओर देख कर मुस्करा देता।

***

सुधीर के धैर्य और डॉक्टर स्वाति की काउंसलिंग से वसुधा के व्यवहार में परिवर्तन होने लगा। अब वह वस्सू को नौकरानी के पास सुला कर कार्नर शाप से घर का ज़रूरी सामान खरीद लाती। इसी प्रकार एक दिन सामान लेने गई वसुधा को सुधीर ऑफ़िस से लौटते मिल गया।

'वसुधा, तुम यहाँ हो, वस्सू के पास कौन है ?' सुधीर ने चिंतित स्वर में पूछा।

'वह सो रहा था। तारा उसके पास है।' वसुधा ने सहजता से जवाब दिया।

'ऐसे वस्सू को अकेला छोड़ कर मत आया करो।'

'ठीक है....।' कह कर वह सुधीर के साथ ही घर लौट आई। सुधीर भाग कर कमरे में गया। वस्सू को बैड पर लेटे देख उसे तसल्ली सी हुई।

डॉक्टर स्वाति की दवा और काउंसलिंग का वसुधा पर असर होने लगा। अब वसुधा को वस्सू की वास्तविकता कुछ-कुछ समझ आने लगी।

एक दिन जब सुधीर ने सामान से भरा लिफाफा वसुधा को थमाया तो उसने लापरवाही से कहा--

'सुनो सुधीर, सारा घर वस्सू के सामान से भरा पड़ा है। चीजें रखने के लिए जगह बाकी नहीं रही। घर में इतना सामान मत लाया करो।'

सुधीर बिना कुछ बोले, कमरे में जाकर वस्सू से खेलने लगा। चोर आँख से उसने वसुधा की ओर देखा। लगातार इलाज के कारण वसुधा अब ठीक होने लगी। उसने घर में पड़े फालतू सामान को माँगने वाले बच्चे को देना शुरू कर दिया।

सुधीर फिर भी बहुत सारा सामान घर पर लाता रहा। अब वसुधा को मन ही मन सुधीर पर गुस्सा आने लगा। वह फालतू का सामान निकाल घर को व्यवस्थित करती, सुधीर उतना ही सामान लाकर घर को भर देता। वह खिलौने लेकर वस्सू के साथ खेलता और खुश होता रहता। वसुधा यह सब देख कर खुश होने की बजाय खीझने लगती परन्तु सुधीर अपने आप और वस्सू के साथ मस्त रहता।

एक दिन ऑफ़िस से घर लौटने पर सुधीर ने देखा, वसुधा आँगन में अकेली बैठी थी।

'वस्सू कहाँ है ?' सुधीर ने अधीरता से पूछा।

'सुनो सुधीर, प्लीज़ मेरे पास बैठो।'

'हाँ, बैठता हूँ, पर यह बताओ, वस्सू कहाँ है ? सो रहा है क्या ?'

'नहीं, वह सो नहीं रहा सुधीर।'

'फिर ?'

'वही...वही तो...मैं आपको बताना चाहती हूँ कि मैं अब ठीक हूँ...।'

'हाँ, हाँ..वो तो मैं जानता ही हूँ। मेरी स्वीटी कभी बीमार ही नहीं थी...। लेकिन यह तो बताओ, वस्सू कहाँ है।'

'वस्सू नहीं है। मेरा मतलब कोई वस्सू था ही नहीं।' वसुधा ने थोड़ा झिझकते हुए कहा।

'यह तुम क्या कह रही हो, हैं....हैं....?' सुधीर की आवाज़ अचानक तेज़ हो गई।

'मैं ठीक कह रही हूँ सुधीर। मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ। मुझे समझ में आ गया है कि वह 'वस्सू' हमारा बच्चा नहीं है। वह तो प्लास्टिक का एक गुड्डा है। उसे मैंने घर के पिछवाड़े फेंक दिया है। अब हमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं।' वसुधा ने सुधीर की आँखों में आँखें डाल कर कहा।

सुधीर बिना वक्त गवाए तेज़ी से छत की ओर भागा, फिर उतनी ही तेज़ी से नीचे उतर कर घर के पिछवाड़े की ओर लपका। वसुधा हैरानी से सुधीर को देखती रही।

कुछ ही देर बाद सुधीर प्लास्टिक के उस गुड्डे को कंधे से लगा, धीरे-धीरे कदमों से वापस आया और बिना कुछ कहे अंदर बैड पर लेट कर वस्सू को अपने सीने पर लिटा कर, उसे थपथपाते हुए लोरी देने लगा- सों जा वे निक्कियाँ तू, तेरी दादी कत्तदी रूँ....

वसुधा की आँखों से झमाझम आँसू बह निकले।

000

व्यंग्य

बाहुबली

सूर्यकांत नागर

वे बोले जा रहे थे सुपर फास्ट की गति से। विनम्र बने रहने की हर मुमकिन कोशिश के बावजूद क्रोधग्नि की आँच मुझ तक पहुँच रही थी। विडियो कॉल होता तो उनके आग बबूला चेहरे को देख पाता! मैं कुछ कहना चाहता था, पर वे 'रफाल' बने हुए थे- 'आपने हमारे ख़त का जवाब नहीं दिया! कितनी आस और विश्वास से हमारे आवेदन पर अनुशंसा के दो शब्द अंकित करने के लिए निवेदन किया था, पर आपने हमारे भरोसे पर पानी फेर दिया।'

मैं स्पष्टीकरण देता इसके पूर्व ही उन्होंने नसीहतों का पिटारा खोल दिया- 'महाशय, आपसे बेहतर कौन जानता है कि पत्रोत्तर न देना अशिष्टता ही नहीं, एक किस्म की अश्लीलता भी है। हम बेसब्री से पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे। डाकिये की दस्तक सुनते ही दरवाज़े की ओर लपकते। मगर निराशा ही हाथ लगती। डाकिया मुँह चिढ़ाती कोई और चिट्ठी थमाकर चला जाता।'

लगातार बोलते हुए वे हाँफने लगे थे। उनका स्वर 'मध्यम' में आ गया तो मैंने कहा, 'भाई साहब! मैं आपके ख़त का उत्तर तो एक पखवाड़ा पहले दे चुका हूँ।'

'यह कैसे संभव है?' उन्होंने आश्चर्य मिश्रित आवेश से भरकर कहा।

'वैसे ही जैसे रात के बाद सुबह होती है, सावन के बाद भादों आता है।' मैं कहना चाहता था, पर इस आशंका से कि चीज़ों को मज़ाक में उड़ाने से चिनगारी और न भभक जाए, सिर्फ इतना ही कहा- 'क्या आप यह कहना चाह रहे हैं कि मैं असत्य वचन बोल रहा हूँ?'

'आपने पता क्या लिखा था?' वादी के वकील की ऊँचाई से उन्होंने प्रति परीक्षण किया।

'वही, श्री गेंदालाल जी गंगवाल।'

'बस, आपसे यहीं चूक हो गई! आजकल इधर इस नाम से हमें कोई नहीं जानता। सभी महाकवि जी.जी. जोशीला के नाम से जानते हैं। नाम-परिवर्तन के दो कारण रहे। एक तो यह कि एक बार किन्हीं 'सज्जन' ने जल्दी में, भूल से या पता नहीं क्यों पते पर गंगवाल की जगह गैंगवार लिख दिया था। इस ख़तरे को पहचान कर और साहित्यकार के रूप में बढ़ती ख्याति के मद्देनज़र हमने अपना नामकरण महाकवि जी.जी. जोशीला कर लिया। महाकवि कहते ही लोगों के मन-मस्तिष्क में हमारी तस्वीर उभरती है। हमने तो डाकिये तक को सख़्त हिदायत दे रखी है कि ख़त के पते पर महाकवि न लिखा हो तो समझना वह पत्र हमारे नाम नहीं है। महाकवि न लिखने की भूल आपसे हुई और उसका खामियाज़ा हम भुगत रहे हैं। हमारी ख्याति तो इतनी है कि क़स्बे में आकर कोई महाकवि का पता पूछता है तो ग्रामवासी ससम्मान उसे हमारे निवास 'कवि-कुंज' पर छोड़ जाते हैं। महाकवि हमारे नाम का पर्याय बन चुका है।'

'समझ नहीं पड़ा, अपनी अज्ञानता पर रोऊँ या हँसू? कुछ कहता इसके पहले ही महाकवि ने

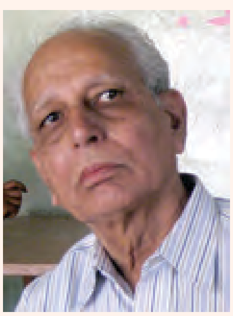

सूर्यकांत नागर
81, बैराठी कॉलोनी
इन्दौर, 452014, मप्र
मोबाइल- 9893810050

मेरे होठों पर उँगली रख दी, कहा-'हमारी रुचि तो ऐसे कामों में कभी नहीं रही, पर चेलों, मित्रों और साहित्यरसिकों के अति आग्रह और अनुरोध पर पद्‌म विभूषण सम्मान से संबंधित आवेदन पर अनुशंसा के लिए आपसे निवेदन निमित्त बाध्य होना पड़ा। हम तो शुरूआत भारत-रत्न और नोबेल से करना चाहते थे। इससे कम हमें कुछ भी स्वीकार नहीं था। हमारा भरोसा 'नॉट फेलुअर, बट लो ऐम इज़ क्राइम' में है। चाहे असफल होओ, पर लक्ष्य छोटा मत रखो। लेकिन जब भक्तों ने आमरण अनशन की धमकी दी तो मन मारकर नोबेल की सीढ़ी से उतर कर पद्‌म विभूषण की गद्‌दी पर विराजित होने के लिए मुझे राजी होना पड़ा।'

'नोबेल तक पहुँचना है तो अंग्रेज़ी में कोई बढ़िया नॉवेल लिखना होगा।'

'लेकिन मुझे तो अंग्रेज़ी ठीक से आती नहीं।'

'आने को तो आपको हिन्दी भी ठीक से नहीं आती, फिर भी आपने हिन्दी में इतना सारा लिख मारा।' मैं अब अपनी वाली पर उतर आया था।

लेकिन उन्होंने मेरे कथन को नज़रअंदाज़ कर कहा- 'अब सिर ओखली में दिया है तो डर काहे का। जी-जान से जुटा हूँ। नए ग्रंथ की रचना में मशगूल हूँ। चाहता हूँ सम्मान घोषित होने से पूर्व छपकर आ जाए तो निर्णायकों को सुविधा होगी। लेकिन कृति दुबली-पतली, बीमार नहीं होनी चाहिए। दृष्ट-पुष्ट तगड़ी-मोटी होनी चाहिए। लगे कि कोई महाकाव्य है। इसीलिए पृष्ठ संख्या बढ़ाने में लगा हूँ। इससे 'वजन' बढ़ेगा। आप तो जानते हैं, आजकल ज़माना महाबलियों का है।'

'और कंटेट?'

'आज समय बाहरी सौन्दर्य का है। चीज़ें सुंदर, आकर्षक, रंगीन और रोशनी में चमचमाती दिखें तो कूड़ा भी बिक जाता है।' महाकवि का तर्क था।

मैं क्या कहता! मैंने मन ही मन बाहुबली को साष्टांग प्रणाम किया और यह कहकर कि दूसरा कॉल आ रहा है, फ़ोन काट दिया।

000

लघुकथा

आबरू

मनमोहन चौरे

चाय की दूकान पर खड़े चाय पीते हुए अचानक किसी ने पीछे से मेरी पेंट को खींचा। पलट कर देखा तो फटे, मटमैले कपड़ों में खड़ी एक लड़की थी, जो भीख के लिए मेरा ध्यान खींचने की कोशिश कर रही थी। इशारों में बता रही थी कि वह भूखी है और उसे खाने को कुछ चाहिए।

मैंने पहले तो उस पर ध्यान नहीं दिया।फिर देखा,वह दस-बारह वर्ष की ही होगी। फटे हुए कपड़ों से झाँकते अपने शरीर को एक हाथ से छिपाने की कोशिश करती और दूसरा हाथ सहायता के लिये फैलाती, सड़क पर भीख माँगती, एक डरी, सहमी लड़की।

मैंने चाय खत्म की और उसे अपनी गाड़ी पर बैठकर चलने के लिए कहा। लेकिन उसने इन्कार कर दिया। शायद उसकी माँ ने यही सिखाया था।

फिर मैं उसे वहीं रुकने का कहकर बाज़ार चला गया। मैंने होटल पर खाना पार्सल करने का आर्डर दिया। उस लड़की के लिये कपड़े ख़रीदे। खाना और कपड़े लेकर मैं फिर उसी जगह पहुँचा।

वह तो जैसे इंतज़ार ही कर रही थी। मैंने दोनों पैकेट उसके हाथ में रख दिये। खाना और कपड़े लेकर वह खुशी-खुशी अपने घर की ओर चली गई, जहाँ उसका परिवार भी शायद उसका इंतज़ार कर रहा होगा।

मैं खुश था कि अब उसे अपने एक हाथ का उपयोग, फटे कपड़ों से झाँकते शरीर को छुपाने के लिए नहीं करना पड़ेगा।

000

मनमोहन चौरे
एस.21, मंदाकिनी कालोनी
कोलार रोड भोपाल 462042 मप्र
मोबाइल- 9893361341

व्यंग्य

कुटाई- ठुकाई- पिटाई

मदन गुप्ता सपाटू

मदन गुप्ता सपाटू
458, सैक्टर 10, पंचकूला, हरयाणा
134109
मोबाइल- 9815619620
ईमेल- spatu196@gmail.com

हमारे एक मित्र मास्टर रामलाल पिछले 10 सालों से कोर्ट में पेशियाँ भुगत रहे हैं। उनका कसूर बस इतना ही था कि एक कॉन्वेंट स्कूल में सोशल स्टडी के पीरियड में उन्होंने एक साहिबज़ादे से भारत के नार्थ- ईस्ट स्टेट के एक राज्य की राजधानी पूछ ली। बड़े लोगों के बड़े बेटों में से एक ने जिसे अभिभावक आई .ए.एस बनाना चाहते थे, इस प्रश्न के जवाब में, दक्षिण भारत के एक नगर का नाम बताया। मास्साब ने बस उसके कान हल्के से गर्म कर दिए। मास्टर जी के अगेंस्ट एफ आई. आर! स्कूल के गेट पर पेरेंट्स एसोसिएशन का धरना प्रदर्शन। अख़बारों में बालक के कान का क्लोज़ अप। प्रशासन का डंडा प्रधानाचार्य पर और मास्साब परमानेंटली घर पर!

उनका यह स्टेटस देखकर हमारे मन में - 'बचपन के दिन भुला न देना' गाना बजने लगा। हमें पहले तो 5 सितंबर याद आया। मास्साब की हालत देख कर शिक्षक दिवस के समारोह याद आए। फिर ग्यारहवीं कक्षा तक ठुकाई, पिटाई, कुटाई, खड़काई, रगड़ाई के सीन याद आए। छोटी क्लास में पहाड़े गा गा कर याद कराए जाते थे। न कुर्सी थी न टेबल और न आज की तरह टू -टू जा फोर का टेबल का टन्टा ही था। बस दो दूनी चार होता था। टुटवां पहाड़े सुनाने में कोई ग़लती हो जाती तो मुर्गा बना कर, हमारी ही तख्ती से हमारा ही पिछवाड़ा प्लेन कर दिया जाता। तब से आज तक दूनी का तो छोड़ो, स्वाए, पौने, ड्योढ़े, हूंटे तक के पहाड़े कंठस्थ हैं।

हमारे एक टीचर, अपने एक हाथ से हमारा एक कान पकड़ते, दूसरे से बड़े प्यार से गाल की मालिश करते। जब मज़ा आने लगता तो ताड़ से एक झापड़ पड़ता और गाल पर ज्वाएण्ट पंजाब का नक्शा कुल्लू से दिल्ली तक का छप जाता और एक ही झापड़ से गाल पापड़ बन जाता।

कुटाई, पिटाई, ठुकाई, खड़काई, रगड़ाई, खिंचाई, घिसाई आदि हमारे सिलेबस के ऑप्शनल नहीं बल्कि कंपल्सरी सब्जेक्ट थे जो बिना नागा होते थे। शोर एक बच्चा मचाता, सज़ा पूरी क्लास को मिलती। जैसे पुराने सैनिक तलवार बगल में सजाए चलते थे और बाद में गन लेकर चलने लगे, ठीक वैसे ही हमारे मास्टर जी हर वक्त डंडा साथ लेकर चलते। यह उनकी पहचान के साथ-साथ एक स्टेटस सिंबल होता। मुर्गा बनना एक योगासन था। बेंच पर खड़े होने की सज़ा मिलना एक इम्युनिटी बूस्टर था। हमें लंबाई बढ़ाने के लिए कोई टॉनिक नहीं पीना पड़ता था। बस ! किसी न किसी छोटी मोटी ग़लती पर मास्टर जी गर्दन पकड़ कर हवा में लहरा देते थे। कानों को चाबी का तरह घुमाना एक्युप्रेशर होता था। स्कूल का ग्राउंड साफ करते कराते जिम में एक्सरसाइज़ करने के बराबर ही था, जहाँ बड़े-बड़े पत्थर उठा कर इधर से उधर रखने पड़ते थे।

पंजाबी वाले ज्ञानी जी खुशख़ती पर पूरा ज़ोर देते। हमारी ही पेंसिल हमारी ही उँगलियों में ऐसे दबाते कि नानी याद आ जाती। आज भी हमारा हैंडराइटिंग ऐसे है जैसे छपे हुए अक्षर। कान का एक्यूप्रेशर ऐसा करते कि भूले हुए सारे फार्मूले मुँह से खुद ब खुद निकलने लगते। कुछ अहिंसावादी अध्यापक भी थे जो स्वयं थप्पड़ नहीं टिकाते अपितु यह शुभ काम साथ वाले लड़के को थमा देते। जब वह यारी दोस्ती में थप्पड़ जड़ने में लिहाज़ कर जाता तो एग्ज़ाम्पल के तौर पर उसके ऐसा झन्नाटेदार रैपटा पड़ता कि वह अपने लाल गाल का बदला एक्शन रिएक्शन के फार्मूले के आधार पर लेता।

अपन लोगों के कान, गाल, पिछवाड़ा अक्सर लाल ही रहता। घर वाले खुश रहते कि पढ़ाई - ठुकाई ठीक-ठाक चल रही है। यानी हमारे गाल ही हमारी पढ़ाई की डेली रिपोर्ट होती थी। कुटाई -ठुकाई दैनिक दिनचर्या थी। स्कूल से बचते तो घर में ठुकते। यानी यह सिलेबस का अभिन्न अंग थी। ठुकाई भाग्य रेखा में ही लिखी हुई थी। खेलते-खेलते भाई लड़ पड़ता तो उसकी शिकायत पर माँ धुनाई करती। चप्पल, पापा का जूता, थापी, हमारी ही तख्ती आदि आदि हमारी माता जी के अस्त्र शस्त्र होते। यदि खुदा न खास्ता, पिता जी का टाकरा मास्टर जी से कहीं बाज़ार में हो जाता और मास्टर जी ने सुबह सवाल ग़लत होने पर ठुकाई की होती तो घर में पिता जी एक बार फिर एक्शन री प्ले कर देते। यदि खेलते खिलाते किसी से लड़ाई में चोट लग जाती तो दवाई से पहले कोर्ट मार्शल होता, बाद में दवा दारु। गली मोहल्ले में कोई ताई, दाई, चाची, मुँहबोली बुआ कोई शिकायत कर देती तो बिना एक्सप्लेनेशन के ठुकाई पिटाई के बाद पूछा जाता कि हुआ क्या था!

बड़े होने पर समझ आया कि हमारे माँ-बाप हमारी ठुकाई पिटाई में इतने एक्सपर्ट क्यों थे। उनके ज़माने में सब कुछ ठोक पीट कर ही होता था। उनका मानना था कि सोना आग में तप कर ही कुन्दन बनता है। चाँदी कूट कर ही वर्क बनती है। धान को मूसल से कूट कर ही चावल निकलता है। कपड़े थापी से पीट कर ही निखरते हैं। चटनी सिल बट्टे पर रगड़ कर ही स्वाद बनती है। अदरक सोटी कुंडे में ही कूट कर फ्लेवर देती है। कोई भी तेल कोल्हू में ही पिस कर ही निकलता है। कनक को पीट-पीट कर ही निकाला जाता है। अब कूटने पीसने का काम मशीनों न ले लिया है। मसाला मिक्सी में ही पिसता है। यही कारण है कि ओलम्पिक में मेडल लाने वाले गाय का दूध पीते, चटनी वटनी खाते, खेत में खेलते बड़े हुए। हम किसी कंपनी का प्रोडक्ट खा-पीकर बड़े नहीं हुए। हमारी इम्युनिटी का एक मात्र राज़ है, बचपन में हमारी ठुकाई, पिटाई, खड़काई, रगड़ाई, पिसाई, धुनाई.........।

000

दोहे

शिवकुमार अर्चन

नहीं छपा अख़बार में, मगर ख़बर थी ख़ास
तड़प-तड़प कर मर गई, नदी किनारे प्यास

पेड़ कटे, पर्वत घटे, नदी गई है सूख
पता चला इससे मुझे बहुत बड़ी है भूख

नई सभ्यता से मिले, हमको ये अनुदान
पौधे भी करने लगे बरगद का अपमान

घाट बिके, पानी बिका, बिकी नदी की रेत
पूँजी के इस खेल में जलते हैं अब खेत

हर्र, बहेरा, आँवला, तुलसी, कड़वी नीम
सुनते हैं अब गाँव के जीवित नहीं हकीम

चित्रकार यह सोचता, बैठ नदी के तीर
पानी बिन कैसे बने पानी की तस्वीर

पोखर भिखमंगे हुए, कुँए हुए कंगाल
पानी-पानी कह रहे जलते हुए सवाल

कंकर पत्थर रह गए, और समय के दंश
कौए मोती चुग गए बन मानस के हंस

किसी विजन की छाँव में, कोलाहल से दूर
चलो सुनें चलकर वहाँ झरने का संतूर

सबको पानी चाहिए, पानी सबकी आस
मगर न कोई जानता क्या पानी की प्यास

000

शिवकुमार अर्चन
10 प्रियदर्शिनी ऋषि वैली, ई-8 गुलमोहर एक्सटेंशन, भोपाल-462039 (म. प्र.)
मोबाइल- 09425371874

व्यंग्य

बोध कथा - सम्राट, गुरु और पुतले

कमलेश पाण्डेय

गुप्त साम्राज्य को रूल करते कुछ साल बीत चुके थे, यद्यपि सम्राट को गुप्त रहना कुछ ख़ास पसंद नहीं था। वे प्रजाजनों को अपने दिव्य दर्शन का लाभ देते रहने के अलावा नियम से अपने मन में छुपे सुविचार उन्हें ब्रॉडकास्टित भी करते थे। अपने उद्बोधनों में वे नए राष्ट्र की संकल्पना प्रस्तुत करने के अलावा अपने पूर्ववर्ती सम्राटों के कर्मों की आलोचनात्मक समीक्षा भी करते। सम्राट को चमचमाते नए खिलौनों का शौक़ था। आए दिन अपनी राजसभा में खिलौना उत्पादकों को आमंत्रित कर सभासदों से नए-नए खिलौनों पर चर्चा करते। सम्राट को श्रेष्ठियों और व्यापारियों से भी बहुत प्रेम था। उनका बस चलता तो दरबारियों की जगह उन्हें ही रख लेते। परंतु सम्राट होते हुए भी बस इसलिए नहीं चलता था, क्योंकि उनके गुरु कहते थे कि मंत्रियों दरबारियों के बिना सम्राट की छवि पूर्ण नहीं होती। वैसे उनके दरबारी पर्याप्त राजभक्त व आज्ञाकारी थे जैसा इस कथा में आगे वर्णित है।

एक बार एक सौदागर अपनी पोटली में नए खिलौने लेकर दरबार में प्रस्तुत हुआ। उसने पोटली से तीन एक जैसे दिखते पुतले निकाले, किंतु उनपर चिपके प्राइस टैग अलग-अलग थे। एक का मूल्य एक करोड़, दूसरे का दस लाख और तीसरे का सौ रुपये था। इस पर सभी दरबारियों ने पहले एक दूसरे का मुँह देखा और फिर सम्राट का देखने लगे कि कब वे मामले को गुरुजी को रेफर करते हैं। गुरुजी ही साम्राज्य के प्रथम परामर्शदाता और कार्यपालक अधिकारी थे। वास्तव में सौदागर को दरबार में एंट्री का पास भी उन्हीं से प्राप्त हुआ था। सम्राट का इशारा पाते ही गुरुजी ने पुतलों का राज़ खोलने हेतु तीन तिनकों का ऑर्डर पठाया। तत्काल कुछ सप्लायर तिनकों का टेंडर लेकर प्रकट हुए और समुचित कार्यवाही और राशि भुगतान कर डिलिवरी ले ली गई।

तदुपरांत डेमो देते हुए गुरुजी ने करोड़ रुपये वाले पुतले के कान में तिनका घुसेड़ दिया। तिनका कान के भीतर ही फँसा रह गया। गुरुजी उवाच- देखो, यह शुद्ध दरबारी मेटेरियल है। कान में जो डाला जाता है सब अंदर ही रहता है। मुँह खोले तो क्या बोले, इतना प्रोग्रामिंग तो हम कर ही लेंगे। इसके दस बीस पीस ऑर्डर कर लेते हैं सम्राट जी। अगले कैबिनेट री-शफल के वक्त काम आएँगे।

ये सुनकर दरबार में सन्नाटा छा गया। सभी सभासद भय और उत्सुकता के मिलेजुले भाव से गुरुजी की अगली कार्रवाई देखते भए। गुरुजी ने तब दस लाख के पुतले के कान में तिनका डाला तो वो आरपार हो गया। गुरुजी एक्सप्लेन्ड - यह हार्मलेस पुतला है। एक तरह से एकदम न्यूट्रल। पर काम का है। हमारा कहा दूसरे कान से निकाल दिया तो विपक्ष का भी निकालेगा। बिंदास पड़ा रहेगा। दूसरों के लिए प्रेरणा देने का काम करेगा। "हमको क्या" ऐसा बोल के राजकाज से क्षुब्ध लोगों को शांत रहने का रास्ता दिखाएगा। इसके दो लाख पीस ऑर्डर करके राज के कोने-कोने में भिजवा देते हैं।

सम्राट के तथास्तु कहने के बाद कुछ राहत की साँस लेते दरबारियों के सामने गुरुजी ने सबसे सस्ते तीसरे पुतले के कान में तिनका घुसेड़ा तो तिनका कान से होकर मुँह से बाहर निकल आया। गुरुजी ने एक टेढ़ी स्माइल के साथ देने से पहले ज्ञान में बघार लगाई - यह आइटम सबसे मस्त है। कान से जो सुनता है ठीक वैसा ही मुँह से बक देता है। सौदागर, हमको ऐसा दस करोड़ पीस चाहिए। अच्छे-अच्छे छाँट कर अलग पैक करना, हम प्रवक्ता और टीवी एंकर बनाएँगे। बाक़ी भक्त बनने-बनाने का काम करेंगे। आगे इन पुतलों के कान में जो डालना है, उसका पूरा स्टॉक है राजकोष में। फ्यूचर सप्लाई का ऑर्डर भी जा चुका है।

गुरुजी के चमत्कारी ज्ञान के आगे नतमस्तक होकर सभी उनकी जयजयकार करने लगे। सौदागर ने भी खुशी-खुशी ऑर्डर के काग़ज़ लेने उस ऑफ़िस की दिशा में प्रस्थान किया जहाँ वे पहले से तैयार रखे थे।

000

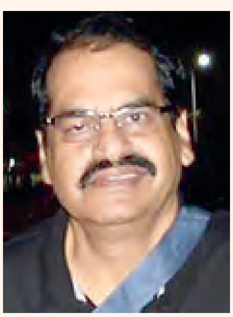

कमलेश पाण्डेय
बी-260, पॉकेट-2, केंद्रीय विहार, सेक्टर 82, नोएडा, उप्र 201304
मोबाइल- 9868380502
ईमेल- kamleshpande@gmail.com

संस्मरण

डॉ. कुँवर बेचैन वो बेचैन मन

डॉ. अरुण तिवारी "गोपाल"

डॉ. अरुण तिवारी "गोपाल"
117/69, तुलसी नगर , काकादेव कानपुर नगर, 208025 उप्र
ईमेल- aruntiwarigopal@gmail.com

"वाग्देवी-गोद में पहलौठिया का कुँवर था वो,
मूक-दर्दों की ज़ुबाँ होने को वो बेचैन था"

1 जुलाई 1942 को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद के काँठ, नामक कस्बे के पास ग्राम उमरी में पिता श्री नारायण दास जी के आँगन में, माँ गंगा देई, की गोद में जन्म लेकर, डॉक्टर कुँवर बेचैन जी आजीवन ढेर विसंगतियों में भी काव्य साधना को गति देते रहे। 1972 में पहले नवगीत संग्रह "पिन बहुत सारे" से शुरू होकर "भीतर साँकल- बाहर साँकल" (1975 में), "उर्वशी हो तुम"(1987), "झुलसो मत मोर पंख" (1990), "नदी पसीने की" (2005), "दिन दिवंगत हुए" (2005), "लौट आए गीत के दिन" (2011), प्रभृति, 9,गीत / नवगीत संकलन और 16 ग़ज़ल संग्रह के साथ, प्रचुर मात्रा में गीत नवगीत संकलनों की भूमिका, पत्र-पत्रिकाओं में आलेखों, और विमर्शों में, ठसक से उपस्थित दिखते हैं। एक बात और स्पष्ट हो कि उनके संकलनों में गीत और नवगीत दोनों हैं, और उनका वैशिष्ट्य भी इनकी सन्धि का है। सूच्य हो कि बाद में उन्होंने कुछ चुने हुए गीतों को और नवगीतों को विलगत: दो अलग-अलग संकलनों में समायोजित किया है।

"भीतर साँकल बाहर साँकल" का गीतकार और "शामियाने काँच के" का ग़ज़लगो बिंबो के टटकेपन, प्रतीकों की घर आँगन वाली पहचान और अपनी सघन संवेदना की सरस

अभिव्यक्ति लिए नई कविता के विभिन्न सरपंचों द्वारा नवगीत को बचाने में अग्रगण्य हस्ताक्षर रहा। उन्होंने अपने संग्रह "पिन बहुत सारे" (1972) से नव- गीतकार के रूप में प्रतिष्ठा पाई "पिन बहुत सारे" में सारे शब्द की सार्थकता के साथ उनके द्वारा संवेदना के सप्त सोपानों का विभाजन जिस विविधा को लेकर आता है! उस में लगभग 65 गीत, घुटन, आक्रोश, व्यंग्य, एकांत, दिशा-दशा, बिंब और शृंगार शीर्षकों में प्राय: आनुपातिक ढंग से रखे हुए हैं! चेतना और अनुभूति के संस्पर्श में मंत्र दृष्टा ऋषि, कैसे जीवन- जगत, कर्म - भाग्य, ईश्वर -मनुष्य, कल्पना -यथार्थ, पेट - हृदय, पदार्थ -चेतना, को संवेद्य शब्दों में उतारता है उसका अप्रतिम उदाहरण हैं कुँवर बेचैन!

उनके कवि में करुणा सहानुभूति यथार्थ के भोगे- अनुभोगे स्वर गुंजन, विवश आक्रोश के मौन अभाव की दयनीय छटपटाहट, मानवीय मूल्यों की छीछालेदर करती निर्दयी सामंती व्यवस्था के विरोध में अशक्त प्रदर्शन की दशा, प्रियतमा के सुकुमार स्पर्श के प्रकम्प, सभी को पकड़ने का माद्दा है ।

तभी तो अपने प्रथम संग्रह "पिन बहुत सारे" में ही उनके बहुआयामी काव्य संवेदना की सिद्धि हुई है ! संग्रह के पहले प्रभाग "घुटन" के अंतर्गत यथार्थ जीवन की विवश होगी गई जटिलताओं की घुटन तथा दूसरे प्रभाग 'आक्रोश' में विसंगतियों से जूझने को उद्यत आक्रोश है! तीसरे प्रभाग 'व्यंग्य' शीर्षक में वह ऊँची राजनीति, स्वार्थी संबंधों, भ्रष्ट बाबू गिरी, और भौंड़ी पाश्चात्य नकल पर व्यंग्य करते हुए दिखते हैं ! चौथे प्रखंड 'एकांत' में जहाँ उनका कवि हर ओर से ठगा हुआ मोहभंग के अनंत संत्रास में दिखता है ! वहीं पाँचवें में प्रभाग 'दिशा' में वह यथार्थ बोध के साथ भविष्य की दिशा निर्धारित करते हुए दिखाई देता है! छठवें खंड 'बिम्ब' में उन्होंने समसामयिक जीवन की विसंगतियाँ दिखाते हुए, टटके बिम्बों के गीत लिखे हैं! जबकि अंतिम, सातवें, प्रखंड शृंगार शीर्षक में तो जैसे हिंदी नवनीत का चरम सृजन हुआ हो! सटीक बिंब,नवीन उपमाएँ, साझा घरेलू प्रतीक और प्रौढ़ शिल्प के साथ हृदय-मस्तिष्क के साम्य की आंतरिक बुनावट लिए डॉ. कुँवर बेचैन के नवगीत, नई कविता के समान आधुनिक संदर्भ वहन करने में सक्षम युग की उपलब्धि हैं।

काव्य में ओज, माधुर्य और प्रसाद में प्रसाद को मुख्य मानने वाले बेचैन जी भाषा और शिल्प के दृष्टिकोण से अपनी स्वयं राह बनाने वाले हैं! सांस्कृतिक परिवेश का द्वैतपन, परिवार, समाज और रिश्तों की टूटन, आदमी से बड़ी होती लाचारी, ग़रीबी और भूख के साथ, मध्यमवर्गीय यथार्थ को साझा घरेलू अनुभूतियों, बिम्बों व प्रतीकों में नए ढंग से जीवंत भाषा में जीवित कर देने वाले डॉ. कुँवर बेचैन की संप्रेषण इयत्ता बेहद पुरअसर रही है !

नैसर्गिक प्रेम, उसके मिलन -बिछुड़न और जीवन को, जिस अधूरे वाक्य के आगे पूर्णविराम लगाकर आपने शब्दायित किया है वह आप जैसे ऊँचे रसिक के लिए ही संभव था!

"उर्वशी हो तुम" की उर-बसी, 'उर्वशी' का रूप वर्णन, सौंदर्य चित्रण और प्रेम प्रकरण 'नवगीत' की रचना प्रक्रिया के मानकों को स्थापित करता हुआ युग का सशक्त हस्ताक्षर बनता है और स्वयं संग्रह को संग्रहणीय बनाता है!

'गद्यं कविनां निकषं बदंति' को मस्तिष्क व हृदय की युग्म चौपाल पर अपने लिए सत्य सिद्ध करता हुआ डॉ. कुँवर बेचैन का कवि अपने पहले ही संग्रह की भूमिका के बहाने जो कहता है वह कवि की कविता की और युग-काव्य-बोध की स्वयं अतीव सुंदर कविता है- अथ में ही इति से आगे की बात है!

उनकी सप्तवर्णी कविता अपने में संवेदना का सद्य: स्नात, हृदय कैशोरी संकोची वृत्ति की भाव-त्वरा, लाज का घूँघट पहन कर, शब्दों की पगडंडियों में पूरी अल्हड़ता के साथ खेली है ! गँवई सारल्य का अबोध मन, "कुछ घुँघराली अलकों के, कुछ कजरारी आँखों" के कुछ मधुर-मधुर सपनों तथा इंद्रधनुषी भौहों के सम्मोहन में फँसा कवि, कैसे हर चित्र को गीत बनाता है वह स्वयं लिखते हैं -"कुछ घुँघराली अलकों, कुछ कजरारी आँखों के, कुछ मधुर-मधुर सपनों तथा इंद्रधनुषी भौहों के" चित्र लिए कल्पना अपने किसलयी होठों से स्मित की स्निग्धता बिखेरती रही।

मन रीझ गया उसकी इस तरह मुस्कान पर और मुट्ठी में कसकर बंद कर लिए वह सारे चित्र, इस डर से कि कोई फिसल न जाए ! मुट्ठी खोली तो हर चित्र गीत बन गया था!

पर "नीली आँखों की जादुई खींच" के व्यामोह में डॉ. बेचैन की आँखों में किसी मजबूरी पर पाशविकता को देखते ही रक्त उतर आता है। भूख, ग़रीबी, अत्याचार के यथार्थ ने उनके चित्र को आकुल व्याकुल किया है और घुटन, आक्रोश व्यंग्य के रूप रंग में उनके गीतों में छटपटाती वेदना, आवेगित क्रोध और विषाक्त शर बनकर आए हैं ! पर उनका कवि मात्र वर्णन का कवि नहीं है वह एकांत चिंतन करता है और भविष्य की दिशा भी देता है !इस तरह पूरे कवि कर्म के दायित्व का निर्वहन करते हुए डॉक्टर बेचैन आगे भी सभी अर्गलाएँ खोलते हैं! क्योंकि वे आरोपित और स्वयं निर्मित बंधनों से जकड़े मनुष्य की "भीतर साँकल बाहर साँकल" में बंधी बेबस ज़िंदगी को पहचानते हैं।

सार्थक परंपरा को ग्राह्य और रूढ़ियों को साँकल मानने वाले डॉ. बेचैन की कल्पना आकाश की वायु में नहीं, धरती की उबड़-खाबड़ ज़मीन पर ठोकरों में सँभलकर आगे बढ़ती है! सहज और अंत: स्फूर्त गीत, बोलचाल की भाषा में रस उड़ेल जाते हैं ! डॉ. कुँवर बेचैन के गीत के सरोकार जितने वैयक्तिक हैं ,उससे अधिक राजनीतिक व सामाजिक। उनके गीत संवेदना की जिस ऊँचाई से शुरू होते हैं उनके संग्रह उतने ही पूर्व नियोजन और भूमिका से बँधे होते हैं ! "पिन बहुत सारे" की भाँति "भीतर साँकल बाहर साँकल" के गीत भी 5 शीर्षकों में विभक्त होकर उतरते हैं पहले..." कच्ची दीवारें, टाइयाँ और शहर" वाले प्रभाग में गाँव के गुड़, चने व शहर की बाज़ारू ज़िंदगी का अंतर! दूसरे खंड में "घर में बहने वाली नदी और रेगिस्तानी नाव" में झुठलाते नाते, बिखरते

विश्वास और घर के बीच उठती दीवारों की बातें हैं !तीसरे भाग का "मुखड़ा अलग अंतरा अलग" में वैयक्तिक सामाजिक दोहरी जीवन प्रणाली पर क्षोभ व्यक्त हुआ है !चौथे प्रखंड में "मौसम तो माध्यम है" के सहारे प्रकृति के नए ढंग से मानवीय संवेदना के साथ उतारे बहु विधि चित्र हैं तो अंतिम 5 वें भाग में शीर्षक "पिंजरा बोलता है" से जातीय, आर्थिक ऊँच-नीच पर आक्रोश व्यक्त हुआ है! उनकी भूमिका व संग्रह के शिष्य विभाजन स्वयं तुलसीदास के बालकाण्ड की तरह एक बहुत बड़े उद्देश्य की सिद्धि का सोपान और कविता के दायित्व की पूर्ति कर देते हैं! उनकी सृजनधर्मिता बुद्धि और संवेदना का जो साम्य बिठा के चलती है, वहाँ सारी व्याख्याएँ, समीक्षाएँ, लकीर पीटने के अलावा और क्या कर सकती हैं! उनके जैसे महान् साहित्यकार अपने हिस्से का सारा कार्य स्वयं कर जाते हैं अन्य को तो बस यही कहना शेष रह जाता है उनके नवगीत हिन्दी नवगीत के इतिहास में स्वयं एक इतिहास है ।

बेचैन जी, श्रोतव्य और साधारणीकरण तथा कवि की ,भुक्त और फलित संवेदना के लिये एक जगह कहते हैं कि,"सृष्टा ही नहीं श्रोता भी, महसूस तो वो भी करता है। हमारा दुख जब दूसरों के पास जाता है तो वे भी हमारे दुख के साथ एकाकार हो जाते हैं। इसे ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने हृदय की रस-दशा और मुक्तावस्था कहा है, इसे ही साधारणीकरण की संज्ञा दी है। जब मैं अपनी कोई दर्दीली कविता सुनाता हूँ तो मैंने लोगों की आँखों से आँसू बहते हुए देखे हैं। अब मुझे ऋषि मुनियों के मन्त्रों पर अटूट विश्वास होने लगा है। मैं सोचता हूँ कि जब मैं साधारण-सा व्यक्ति भी अपने गीत से लोगों को रुला सकता हूँ तो ऋषि-मुनियों ने तो ये मन्त्र वर्षों की तपस्या से सिद्ध किये थे, तो वे असरदार क्यों नहीं होंगे। हमारी रचनाओं से लोग प्रभावित होते हैं इसका सबसे से बड़ा कारण शब्द-साधना और यही साधारणीकरण है।"

और यही, उनके सृजन का भी वैशिष्ट्य है, उनके नव गीतों में उनका परिवेश ही सर्वाधिक भुक्त होकर बिम्ब का स्वरूप ग्रहण करता है।

एक नवगीत देखें-

दृष्टि हटी जब भी मन पुस्तक के पेज से ।
फिसल गई स्वीकृतियाँ जीवन की मेज़ से।
हाथों को मिली हुई लेखनी बबूल की।
दासी जो मेहनत के साँवरे उसूल की।
जितने ही प्राण रहे, मेरे परहेज़ से
ग़लत दिशा चुनी अगर काग़ज़ के पेट ने।
उसको सम्मान दिया हर पेपरवेट ने ।
ब्याही जाती खुशियाँ झूठ के दहेज से---

इसमें देखें तो उनकी रचना प्रक्रिया में सामने के दृश्यों को विषय बनाना या विषय की अभिव्यक्ति का साधन बनाना ही उनके बिम्बधर्मा सृजन का वैशिष्ट्य है। ऐसा लगता है कि वे ऑफ़िस में कुर्सी पर बैठे, सामने मेज़ पर उपस्थित वस्तुओं को प्रतीक, बिम्ब विधान में बदलते जा रहे हैं।

एक अन्य नवगीत में देखें --

कैसे करें गुज़ारा?
मांसाहारी जग-होटल में शाकाहारी मन !
कैसे करें गुज़ारा?
होटल-- जिसमें एक दूसरे को मानव खा जाता सुरा समझकर, जिसमें शोणित नर का नर पी जाता
बैरा झूठ, घृणा बावर्चिन, फेंक रहे हर दिन,
कोई ग़लत इशारा।

एक बात और स्पष्ट होती है कि नवगीत की और अन्य विधाओं की रचना प्रक्रिया का मौलिक अंतर यह है कि अधिक साधना में डूबकर बिम्ब सृजन होगा, तो जन्मों की संचित वृत्ति और वर्तमान मानव व्यापार का संस्कार बोध ही उसे उकेरेगा और इस दशा में सान्द्र, पर अधिक मात्रा में सृजन नहीं हो पाता है। अन्य लोग रूपक विधान को बिम्ब सादृश्य रखने की शीघ्रता में विषय को अभिव्यक्ति देंगे तो सामने उपस्थित दृष्टि व्यापार को ही संवेद्य प्रातिभ बिम्ब की चेष्टा में उपरत होंगे; पर नैसर्गिक कम इस में अध्यव्यवसाय, अधिक है और मूलत: वो है तो संवेद्य पर काव्य उपादानों में सिद्ध अध्यव्यवसायी है। डॉक्टर बेचैन के यहाँ यह अधिक दिखता है। नवगीत का 'नव' जो साधना माँगता है उतनी बिम्ब दृष्टि में उपरत, समाधि सहज नहीं लगती। इसलिए ईमानदार काव्य सृष्टा खंडित या किस्तों की या यूँ कहें कि शमशान बैरागी-राग, में वृत्ति वणिक होना सहज पाता है। इसी कारण से वह मौलिक लेखनी प्राय: नवगीत सृजन से थक कर ग़ज़लों की ओर चली जाती है और इसमें कई बड़े-बड़े नामचीन नवगीत कारों का नाम लिया जा सकता है।

आज मौलिक और ईमानदार होने की इतनी आत्मनिष्ठा रति वाली, ज़िद नहीं है इसलिए वो सभी खंडित बिम्ब सर्जन के पठित बिम्बों के अभ्यासी और संकलनकर्ता भी नव गीतकार ही बने रहते हैं, क्योंकि उन्हें ग़ज़लगो से नवगीतकार होने में अधिक नैसर्गिक फीलगुड की व्यामोही वांछा छोड़ने के हठी अवसर सहज उपलब्ध हैं।

देखें उसी ऊपर वाले नवगीत का पूरा सांग रूप विधान -

होटल -जिसके दरवाज़े हैं बड़े सजे सँवरे।
लेकिन हैं अश्लील जहाँ के नाजायज़ कमरे ।
रखे जगत् के वेश्यालय में कब तक साँस दुल्हन आँचल पर ध्रुवतारा--

और इसी तरह के उनके सांग रूपक और भी नवगीतों में हैं, जैसे 'पत्नी' जिसमें नदी की धारा का सांग रूपक है,

समाज की हर विसंगति को नंगी आँखों से साक्षात्कृत कर करने वाले डॉक्टर बेचैन जी ने शब्दों को नए अर्थ संस्कार देने की जिम्मेवारी में उतारा है। पूरी बोधगम्यता से दूसरी ज़मीन के शब्दों को अन्य ज़मीन में पूरे ऐसोटोरिक-आपद्धर्म जीना सिखाया है,

देखें- उनका एक नवगीत -'मटमैले मेज़पोश'

जीने का एक दिन मरने के चार
हमने लिए हैं उधार
मटमैले मेज़पोश लंगड़े ये स्टूल
गमलों में गंधहीन, काग़ज़ के फूल
रेतीली दीवारें लोहे के द्वार
हमने लिए हैं उधार
दो, गज की देहों को दस इंची वस्त्र ।

इस्पाती दुश्मन को लकड़ी के शस्त्र।

झुकी हुई पीठों पर पर्वत के भार

हमने लिए हैं उधार

घाव भर पावों को पथरीले पंथ

अनपढ़ की आँखों को एम.ए. के ग्रंथ

फूलों के हृदयों को काँटो के हार

हमने लिए हैं उधार में, हमने अप्राकृतिक रूप से कथित विद्रूप प्रगति की होड़ में जो उधार लिया है उससे सिर्फ आत्महंता परिवेश में हमी ने स्वयं को बारूद के टीले पर बाँध लिया है, और घाव भरे पाँव को जो सिर्फ पथरीला पंथ बचा है उस पर लकड़ी के शस्त्रों से इस्पाती दुश्मन की उपस्थिति से यथार्थवादी विवशता भरी आमरण जूझ है।

हाँ एक बात ध्यातव्य है की मंचीय-सस्वर पाठ के पारंपरिक द्रोण का शिल्प नवगीत में 'गीत+नव' है और प्राय: ध्वनन भी सांगीतिक, पर, जहाँ विसंगति को खुरदरी भाषा की यथार्थ बोध जनित दरकार है वहाँ वे अभिव्यक्ति से अधिक साक्षात्कार को ही महत्व देते हैं। जैसा कि ऊपर मैंने उन्हीं के शब्दों को उकेरा है साधारणीकरण के संदर्भों में डॉ. कुँवर बेचैन जी के संवेद प्रातिभ को 'साक्षात्कृत' होने में यह विश्वास रहता है कि जब मंच पर कुछ पंक्तियाँ शुरू सभी को रुला और हँसा सकती हैं, तो ऋषि-मुनि परंपरा की मंत्र शक्ति -'शब्द शक्ति' का पर्याय ही है और अपनी प्रभविष्णुता की सिद्धि भी ।

पर सत्य यह भी है की नवगीत जटिलतम समय की सरलतम संवेद्यअभिव्यक्ति है, जहाँ कोई शब्द की मृसणता या खुरदुराहट को, दूसरा कोई भी पर्याय नहीं है, क्योंकि महीन और सटीक कैलीपर्स की माप में प्रत्येक शब्द के लाक्षणिक और आभिव्यंजक संस्कार, में सृजित बिंब अपनी पहचान विलग ही रखता है।

वस्तुत: नवगीत की रचना प्रक्रिया में जिस 'टटके और मौलिक बिंब धर्मा सृजन की अपेक्षा' है वहाँ बिंब के बारे में अभी बहुत कुछ लिखे जाने पर भी हमारी लोक संस्कृति के अनुसार अभी बहुत कुछ असाधारण साधना अपेक्षित है। नई कविता के बिंब धर्मा सृजन का अथ-इति, आयातित है और नवगीत का सब कुछ ही अपना "लोक" है। जिसे भ्रम वश कभी देशज वार्धक्य, या भदेस बाहुल्य कहकर, हम निमीलित दृष्टि से, बंकिम स्थिति से पराङ्मुखी होकर निहारते रहे हैं ।

तद्भव में निहित जातीय संस्कार बिंब में आत्मीयता और आसक्ति रख ही देते हैं। सांस्कृतिक बोध की कुछ सूत्रात्मक शब्दावली को छोड़कर, शेष तत्सम बाहुल्य भाषा के बिम्ब की अर्थ संचरण की गति, पंगुता का शिकार हो जाती है।

डॉ. कुंवर बेचैन जी के युगबोध के यथार्थवादी नवगीतों में तद्भव की उपस्थिति, तत्सम के साथ ही रह पाती है और यह उनका पारंपरिक गीतकार नवगीत होने में प्रयासरत दिखता है, देखें-

सूखा पेटों के खेतों को,

वर्षा नयनाकाश को,

शीत हड्डियों की ठठरी को,

जीवन दिया विनाश को,

भूखी है हर साँस,

जुती लेकिन कोल्हू के बैल सी।

यहाँ एक साथ, ठठरी, कोल्हू के बैल, और नयनाकाश, व जीवन विनाश उपस्थित दिखता है। पर संप्रेषणीयता कहीं बाधक नहीं है। आगे, जब, जीवन को -"टूट रही है आज ज़िंदगी इक टूटी खपरैल सी" लिखते हैं तो उनकी लेखनी की प्रभावान्विति के सम्मोहन को मानना पड़ता है। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि मंच का सफल गीतकार/ नवगीतकार संप्रेषणीयता में अद्भुत होता ही है।

वैसे, डॉ. कुँवर बेचैन जी के नवगीतों में शब्द चयन प्रवेश की चेतना से उगता है और शब्द ब्रह्म है क्योंकि इसी के चयन में व्यक्ति का कृत और भुक्त का वैशिष्ट्य निर्धारित हो जाता है और यहाँ डॉ. कुँवर बेचैन जी के कवि कर्म में, ध्वनि, लय, छंद के सभी सोपानों पर शब्द चयन, परिवेशगत और प्राय: ऑफ़िस के आसपास अक्सर उभरता है। पर उनकी चेतना उन परिवेश जनित शब्द को संवेदनानुरूप नया संस्कार देकर अपनी रचना प्रक्रिया को विकास देते हुए दिखती है,

देखें--

दुनिया के ऑफ़िस में अब तो बैठे हैं हम प्राण लिपिक--

परित्यक्ता सी कई फाइलें अलग-अलग मेज़ों पर चुप हैं।

उनके, घूँघट जैसे अंधे कोटपीस की छिपी तुरुप हैं।

कई रिश्वत गर्लफ्रेंड सी झाँक रही बाहर की चिक से--

डॉ. कुँवर बेचैन जी के 'अंधियारे - उजियारे' सभी दृश्य-परिदृश्य अपने हैं और उनकी रचना प्रक्रिया में उनके बिम्ब उनकी परिवेश जनित भाषा में अंतर्भुक्त होकर, कथ्य के आंतरिक सादृश्य को प्रत्यक्ष कर पाने में प्राय: सफल रहे हैं।

ऐसा नहीं कि उनकी दृष्टि मात्र कॉलेज या ऑफ़िस की ज़िंदगी के बाहर नहीं जाती। उनके यहाँ प्रकृति भी है पर कम है और जितनी भी है वह नवगीतों में आलंबन रूप में ही अधिक है। उद्दीपन की रटी रटाई पठित पोथियों के प्रभाव से उनके नवगीत प्राय: विमुक्त हैं ,

देखें ,-

ज़िंदगी अपनी नहीं रही-

काली सड़कों पर पहरा है अनजाने तम का

नभ में डरा डरा रहता है चंदा पूनम का

नव के उर में चुभी कील से तारों की बारात

कौन सी पीड़ा नहीं सही

रोज़ तीर सी चुभ जाती है पहली सूर्य किरण सूरज शेर बना फिरता है मेरे प्राण हिरण

कर जाती है धूप निगोड़न,पल-पल पर आघात

अब यहाँ विषम परिस्थितियों में हाँफती, ज़िंदगी के लिए "सूरज शेर बना फिरता है मेरे प्राण हिरण" की अभिव्यंजना की सटीकता से कौन पाठक/ श्रोता ,सम्मोहन में ना आ जाएगा ।

डॉ. कुँवर बेचैन के छंद विधान की अनुपालना कभी भी वैचारिक ठुमकन में छंद की पायल नहीं उतारती। उनका छंद विधान, शाब्दिक समाहर्ता, शब्दार्थ-लय और सांगीतिक ध्वनन, एकदम "गीत" तथा कथ्य व कहन, पूरी तरह से "मौलिक व नव" है।

डॉ. कुंवर बेचैन जी के नव गीतों का "नव" अपनी रचना प्रक्रिया में शब्दार्थ के बिंबात्मक और प्रतीकात्मक पक्षों के समतोल में बिंब पर अर्थ भार आवश्यकता से कम डालता है और ऐसा इसलिए कि वे हृदय से गीत की परंपरा को आत्मसात् किए बैठे हैं। समसामयिक बिम्बों के सटीक अभिव्यंजन हेतु नवगीतकार, को स्वयं वर्तमान की विचित्र विसंगतियों और जटिलताओं को आत्मसात् करते हुए सहानुभूति ही नहीं सहभुक्त-जीवन के स्तर तक उतरना पड़ता है ।

डॉक्टर कुँवर बेचैन जी ने ग़ज़लें अधिक लिखीं और गीत भी कम नहीं लिखे पर नवगीत तुलनात्मक कम लिखे। कदाचित और लिखते या सिर्फ नवगीत लिखते तो उनके बिम्ब सृजन का अभ्यास से बिम्ब संमूर्तन और कौंध, से आगे वस्तु बोध से विलग होकर प्रतीक के समकक्ष उभरते, और यह कलात्मक-आधान उनके नवगीतों में कहीं-कहीं दिखता भी है और जहाँ भी यह अधिक मुखर हुआ है वह उनके परिवेश की ही आमद है और वहाँ उनका रचनात्मक तादात्म्य स्पष्ट दिखता है--

देखें -

भारी-भारी तोपें हैं -'

ऑफ़िस के दरवाज़ों पर कौन कह रहा चपरासी?

भारी भारी तोपें हैं--

कुछ काग़ज़ के नोटों से इनके मुँह खुल जाते हैं वज़न कुर्सियों के उनकी बातों से तुल जाते हैं रिश्वतखोरी के घर से उनके बड़े घरोपे हैं-'

लौटा दिया इन्होंने की लंबी चौड़ी भीड़ों को

यह जेबों में रखते हैं जहर उगलते कीड़ों को भीतर ज्वालामुखी अचल, बाहर चंदन थोपे हैं-

और यहाँ, घरोपे, के टकसाली पन के साथ सहज भाषायी, बोधगम्यता भी दृश्यमान है, तभी तो अंग्रेज़ी (ऑफ़िस, नोट),अरबी-फारसी (चपरासी, काग़ज़, रिश्वतखोरी, ज़हर, जेबों) के साथ हिन्दी के तद्भव -तत्सम (घर, अचल)प्रभृति शब्दों में अनुभूति और भाषा के मध्य की दूरी प्राय: ख़त्म हो जाती है और पुन: इंगित करूँ कि मंच पर उपस्थित सृष्टा के लिए संप्रेषणीयता प्राथमिकी रहती है।

यद्यपि अपने नवगीत की संप्रेषणीयता के संबंधों में वह खुद ही अपने एक साक्षात्कार के दौरान उत्तर देते हुए कहते हैं कि ,"सच कहूँ, तो मेरा ज़ोर केवल लिखने पर रहता है और संप्रेषणीयता मेरी प्राथमिकी रहती है, मेरे रचे वह गीत जो सरल भाषा में होते हैं किंतु उनमें भावों की गहराई और विचारों की उदात्तता रहती है उनको मैं मंच के लिए चुन लेता हूँ, इन कविताओं को आम लोगों से लेकर खास लोग तक पसंद कर लेते हैं जो कविताएँ थोड़ी ऐसी होती हैं जो मंच पर सुनाने में श्रोता को कम समझ में आए, उन्हें मैं छपने के लिए रख लेता हूँ, उनमें जिनकी कहन, बिम्बात्मक विधान अच्छा होता है, उन्हें मैं पत्रिकाओं में और किताबों में छपने के लिए दे देता हूँ, इसमें मैं उन लोगों का भी रह पाता हूँ जिनका कवि सम्मेलनों से कोई वास्ता नहीं है।"

और इसमें आप स्वयं देख सकते हैं कि वे 'लोक' को सीधे सुनाने के लिए पहले मन रखते थे फिर बचा हुआ 'लोक' को समझने के लिए स्वयं छोड़ देते थे ।

वस्तुत: वह कवि मंचों के जंगम साहित्यिक तीर्थ और साहित्य के पृष्ठीय मंच पर एक महत्वपूर्ण संस्था और 25 देशों के सैकड़ों शहरों में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत और माँ भारती के साहित्यिक गौरव की प्राण प्रतिष्ठा करने वाले रहे। उन्होंने अपने पीछे मंच और पन्नों पर साहित्यकारों की एक पूरी जमात तैयार की है। वह जीवंत हिन्दी काव्य के विश्वविद्यालय रहे हैं।

जन्म के कुछ ही दिनों में पिता का और कुछ वर्षों में माँ के अभाव की पूर्ति जिस भाव एक से हुई वह काव्यांजलि ही रही पर 1 जुलाई 1942 से 29 अप्रैल 2021 तक के जीवन काल को पूरा कर, काव्य घराने, के पहलौठिया, राजकुंवर, डॉ. कुँवर बहादुर "बेचैन" सक्सेना, जी का कोरोना पीड़ित होकर अचानक से,यूँ, चले जाना सभी को बेचैन कर गया।

000

ग़ज़लें

विवेक चतुर्वेदी

स्वयं के भी विरुद्ध हिन्दी को,
लड़ना पड़ता है युद्ध हिन्दी को।
दिल पे इमला लिखो तो पहचानें,
धड़कनों से भी शुद्ध हिन्दी को।
हमने देखा है ताण्डव करते,
ड से डमरू पे क्रुद्ध हिन्दी को।
और कब तक रखेगी अंग्रेज़ी,
दासता में निरुद्ध हिन्दी को।
कामना है यही रखे मन में,
बोध मेरा प्रबुद्ध हिन्दी को।

000

सृष्टि का प्रणवाक्षर है लड़कियों की ज़िंदगी
किन्तु कितनी साक्षर है लड़कियों की ज़िंदगी
नापना चाहो तो बालिश्तों से इसको नाप लो
क़द में केवल हाथ भर है लड़कियों की ज़िंदगी
ज़िन्दगी भर की रज़ामंदी का अपनी उम्र पे
एक लघु हस्ताक्षर है लड़कियों की ज़िंदगी
व्यक्त करती है सदा ये स्वयं के अनुपात को
अंश के नीचे का हर है लड़कियों की ज़िंदगी
ये सदा अंकित रहेगी अनुभवों के ग्लोब पर
अक्ष, ध्रुव, देशांतर है लड़कियों की ज़िंदगी
सब समीकरणों में अपनी अस्मिता के मान को
हर समय रखती अचर है लड़कियों की ज़िंदगी
ये तो बतलाओ कि घर की नींव को रखने के बाद
क्या फ़क़त दीवारो-दर है लड़कियों की ज़िंदगी

000

विवेक चतुर्वेदी
महल्ला बाज़ारकला, निकट कुदेशिया मंदिर
सहसवान रोड / उझानी (बदायूँ) उत्तर प्रदेश
243639
मोबाइल- 7895811012

कविताएँ

ब्रजेश कानूनगो की कविताएँ

संक्रमण काल

वंदना
करुण गीत में बदल जाती है धीरे धीरे,
भर जाता है आकाश रुदालियों के क्रंदन
से।

सलीब पर कौन चढ़ गया,
दिखाई नहीं देता आँसुओं के परदे में।
000

दृश्यांतर

एक गिलहरी मुँडेर पर
कुतरती रही अनार के दाने।

ज़रा सी आहट हुई
तो इठलाती हुई दौड़ गई पेड़ की डाली पर,
पत्तियों की आड़ में छुपकर
देखती रही बहुत देर तक मेरी ओर,
जैसे दरवाज़े की ओट से
कोई बच्चा देखता है
दफ़्तर से घर लौटे पिता को।

चिड़ियों का एक जोड़ा
चुगता रहा बाजरा,
सिकोरे के पानी में डुबाई अपनी चोंच
और पंखों से उड़ाई कुछ बूँदें
तो इंद्रधनुष बिखर गया
सर्दियों की गुनगुनी धूप में।

दृश्यांतार तो तब हुआ
जब एक सुकोमल पिल्ला अकस्मात्
चाटने लगा मेरे पंजे को।

यह दुनिया भी
उसी संसार में है
जिसे छोड़कर आया मैं ड्राइंगरूम में
बिजली गुल होने के बाद।
000

ज़हर पीते हुए

पहली घूँट के साथ
मिटने लगती होंगी स्मृतियाँ शायद
कड़वे समय की।

गलने लगता होगा
पुराना संग्रहित कोई दुःख,
औषधि की तरह
काम करता होगा ज़हर।

चिंता नहीं होती ज़हर पीते हुए
कि खट्टा,कसैला,नमकीन कैसा है उसका
स्वाद,
बेस्वाद हुई दुनिया से मुक्ति की तलाश में
इंद्रियों की चिंता नहीं करता पीने वाला।

कुछ तो इतने मीठे होते हैं ज़हर,
कि उम्र गुज़र जाती है मरते-मरते।

और जब विश्वासघात
का पता चलता है अकस्मात्,
मौक़ा ही नहीं मिलता
जायका लेने का।

ठीक-ठीक स्वाद पता नहीं इसका अब
तक,
किसी दुनियादार को।
000

चाय

भक्ति में डूबी मीरा ने
पिया था विष का प्याला कभी।
प्याला ही जानता है रहस्य कि कितना मधुर
है तरल
और कितना ज़माने का ज़हर उतर रहा
भीतर।

अपने दुखों को
चाय की चुस्कियों के साथ हँसते हुए पी
जाते हैं प्रेम में डूबे लोग....!
000

छद्म

मेरे भीतर
एक मैं हूँ।

निकल आता है कभी-कभी भीतर से
और पूछने लगता है कई सवाल,
जैसे मैं अपने पिता से उनके साथ टहलते
हुए
अपनी जिज्ञासा व्यक्त करता था हर दिन,
मेरे हर सवाल का जवाब होता था उनके
पास।

पिता नहीं हैं अब इस दुनिया में,
मेरे सवालों का जवाब मुझे ही देना हैं अब,
अपने भीतर से निकलकर
पूछने लगता हूँ अपने से ही कुछ प्रश्न।

इतनी बदमाशियों,खराबियों के चलते,
खुश कैसे रह लेते हैं हम संकटों के साथ?

मैं ही दे लेता हूँ जवाब,
सवालों को पिटारे में बंद कर
नाचते हैं, गाते हैं जब भीड़ के साथ,
भुला देते हैं अपने दुखों को।
000

ब्रजेश कानूनगो, 503,गोयल रिजेंसी,चमेली
पार्क, इंदौर 452018
मोबाइल- 9893944294
ईमेल- bskanungo@gmail.com

जावेद आलम ख़ान की कविताएँ

आत्ममुग्ध पीढ़ी

हम दर्द की नदी पर रिश्तों का पुल बनाए
खड़े हैं
हमारी मुस्कान में दबी है हृदय की असंख्य
चीत्कारें
विजय के दंभ में फूली हमारी कल्पनाएँ
कछुए की पीठ हो चुकी हैं
हम अपनी कुरूपताओं पर संगमरमर का
लेप लगाकर मुग्ध होने वाली पीढ़ी हैं
युद्ध और शांति हमारे लूडो पर चित्रित साँप
सीढ़ी है
हमारी पशुता देवत्व के जिरहबख्तर में कसी
है
हमारी समूची सभ्यता कंटक-आख्यान में
धँसी है
अहिंसा की भव्यता में छिपे है किसी कलिंग
के खंडहर
हर महाप्रस्थान में छिपा है एक महाभारत
का प्रायश्चित
000

मेरा हृदय सच और गुनाह का अखाड़ा है

मैं वही हतभाग्य प्रेमी हूँ
जिसकी प्रेमिका उसका प्रेम पत्र डस्टबिन
में फेंक कर
उसे छोड़ गई हो
चर्च में किए उसके कन्फेशन को सुनकर
जीसस की प्रतिमा के सामने रखी मोमबत्ती
में
बूँद-बूँद पिघलने वाला शरीर दरअसल मेरा
ही है
घंटी की हर गूँज मेरे प्रायश्चित की कराह है
मेरी आत्मा की सूली मेरे ही गुनाह है
जीवन सच्चाइयों का मलबा है अच्छाइयों
का कबाड़ा है
मेरा हृदय सच और गुनाह का अखाड़ा है
मैं आल्पस की बर्फ में दबे चर्च में मिल
गया
इस उम्मीद के साथ
कि जब कयामत के बाद आशीष की मुद्रा
में
जीसस फिर से उठाएँगे अपना स्नेहिल हाथ
और एक बार फिर से धरती प्रेम से
लहलहा उठेगी
तब शायद मेरी वापस आई साँसों से
निकला
कोई झोंका तुम्हे सुवासित कर दे
और मैं उस मादक गंध का पीछा करता
हुआ
कभी कैस बनकर सहरा लाँघता हुआ
कभी महिवाल की तरह दरिया में डूबता
उतराता
कभी जायसी का रतनसेन बनकर
पार्वती महादेव के आशीष से जंगल पार
करता
तुम तक पहुँच ही जाऊँगा
जहाँ हम दोनों हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
किसी शीतल शिला की छाँह में
प्रेम में शर्त न रखने की कसम खाएँगे।
000

पनाह

दिन की सारी थकान की पनाह है रात
रात की उदासियाँ तारों में पनाह ढूँढ़ती हैं
तारों की पनाह है सूरज की सफेद रोशनी
सबको अपने तेज से चकाचौंध करने वाला
सूरज
अंततः सो जाता है पहाड़ और समंदर की
पीठ पर
पहाड़ और सागर पनाह लेते हैं ज़मीन पर
ताप की प्रकृति उर्ध्वगामी है
इसलिए हर उबाल अक्सर आसमान में
भागता है
और ठंडा होते ही शरण लेता है बादल की
रंग-बिरंगे बादल एक दूसरे के साथ खेलते
हुए
धक्का-मुक्की करते हुए
रगड़ते हुए झगड़ते हुए
अंततः थककर आ जाते हैं ज़मीन की
पनाह में
श्रांत क्लांत पथिक का विश्रामस्थल हैं वृक्ष
की छांह
लेकिन दरख़्तों की पनाह है ज़मीन
चाहे सूरज के चक्कर लगाती हो पृथ्वी
चाहे चमकते सितारे हज़ार गुना बड़े हो
पृथ्वी से
चाहे वायुमंडल निर्वात और गुरुत्वाकर्षण
के
हज़ार नियम दिए हो विज्ञान और
खगोलशास्त्र ने
मगर फिर भी हमारी आँखें
सबकी पनाह पृथ्वी में ही देखती हैं
हम कितने ही विचारवान् और बुद्धिवादी हो
जाए
लेकिन बुद्धि का सहज बाँकपन

उस ज़मीन को ही पनाहगाह मानता है
जिस पर उसके अपने पैर टिके हैं
जबकि वह खूब जानता है कि लाखों
ज़िंदगियाँ
पनाह लेती हैं पानी में
साँसें अपना हिस्सा हवा से लेती हैं
ज़िंदगी भले ही आसमान का चक्कर
काटती रहे
लेकिन आख़िरी पनाह ज़मीन पर ही मिलती
है
000

जावेद आलम ख़ान
हाउस नंबर 380, थर्ड फ्लोर, पॉकेट 9,
सेक्टर 21, रोहिणी, दिल्ली 110086
मोबाइल- 9136397400
ईमेल- javedalamkhan1980a@gmail.com

राजीव कुमार तिवारी की कविताएँ

इन दिनों

जीवन को जिस तरह जीना था
उस तरह नहीं
जिस तरह जी सकता था
उस तरह जीया है
जिससे जीतना
जितना कठिन रहा
उससे उतना कम ठाना
मनुष्य से भी
समय से भी
जब कभी ठना भी
ठाना अंतिम विकल्प की तरह
जो मिला/पाया उसमें
मन को
समझा लिया
मान खोकर
प्राण बचा लिया
कठिन को
थोड़ा सरल
इस तरह
बना लिया

पता रहा
जिनको हरा ही लूँगा
उनके पीछे जा जाकर
लड़ता रहा।
000

शोषक भी शोषित भी

मैं कैसे बयान दे सकता हूँ
शोषकों के विरुद्ध
उनमें से एक मैं भी तो हूँ
मैं कैसे चुप रह सकता हूँ
शोषकों के विरुद्ध
शोषितों की भीड़ में
एक मैं भी तो हूँ
जिसको जहाँ अवसर है
वह शोषक है
शोषण के चक्के में
जब खुद पिसता है
आदमी तभी
शोषण के विरुद्ध खड़ा होता है।
000

रेलवे प्लेटफॉर्म

सब रंग
सब ढंग
सब तस्वीर
जीवन के
संसार के
एक घाट
एक ठिकाने
चहल पहल
शोर शराबा
चिल पों
गहमा गहमी
भाग दौड़
धक्का मुक्की
अफरा तफरी
हँसी ठहाके
रोना धोना
चीखना चिल्लाना
गाना बजाना
धूप छाँह
सुख दुख
मिलन विछोह
प्रस्थान आगमन
गति ठहराव
रुकावट थकावट
प्रतीक्षा कौतूहल
तलाश पहुँच
शादी गौना
मरनी हरनी
इंटरव्यू ट्रांसफर
रोग इलाज
मौज तफ़रीह
प्यार मोहब्बत
झगड़ा झंझट
वैध अवैध
इंसान जानवर
स्वस्थ रुग्ण
संपन्न बिपन्न
सब एक घाट
एक ठिकाने।
000

तुम

मेरा जो कुछ है
वह तुमसे जुड़कर ही अर्थपूर्ण होता है
तुम्हारी लकीर
जब मेरी लकीर पर पड़ती है
तब मेरे होने का कोण खुलता है
मेरे आगे जुड़कर
विशेष बना देती हो तुम मुझे
वरना मैं साधारण संज्ञा ही रहता हूँ
मैं मिट्टी हो कर
तभी उर्वर होता हूँ
जब जल होकर
तुम मुझे सींचती हो
समय के सागर में
मेरे अस्तित्व को थाह
तुम्हारे घाट पर
पहूँच कर ही मिलती है
तुम्हारी उपस्थिति के विस्तार में मेरा होना
निर्बाध और बेफिक्र रहता है हर समय।
000

राजीव कुमार तिवारी, प्रोफ़ेसर कॉलोनी,
बिलासी टाउन, देवघर, झारखंड
मोबाइल- 9304231509,9852821415
ईमेल- rajeevtiwary6377@gmail.com

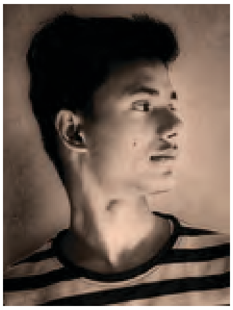

मनीष कुमार यादव की कविताएँ

पिता और नदी

पिता एक अशेष आलिंगन हैं
जिनकी ओट में मैं
अपनी असमर्थता छिपाए बैठा रहा
एक चौथाई उम्र
पिता नदी में देखते हुए मेरे भविष्य
के बारे में सोचते हैं
पर मैं बस नदी की अठखेलियाँ ही
देख पाता हूँ
पिता लगभग नदी होते हैं
नदी को देखते हुए नदी हुआ जा सकता है
पर पिता को देखते हुए पिता हो पाना
लगभग असंभव
लगभग असंभावनाओं ने घेर रखा है मुझे
मैं असंभावनाओं का समुच्चय हूँ
या अपने पिता जैसे ना हो पाने के अंतर्द्वंद्वों
का अतिरेक?
पिता कहते थे
प्रौढ़ नदियाँ ज़्यादा मिट्टी काटती हैं
और परिमार्जन करके कछार बनाती हैं
पुल बन जाने से सबसे ज़्यादा उदासी
नावों को हुई
और नदियों का पानी लौट जाने पर कछारों
को
नदियों के सूखने का एक मौसम होता है
और उफान का भी
पिता एक चौथाई उम्र तक रहे
और तीन चौथाई रहीं उनकी स्मृतियाँ
स्मृतियाँ जब बहुत कचोटती
तो बुरा स्वप्न लगने लगती
लेकिन बादल बन कर बरसने पर भी
बारिश नहीं लगती
मैं एक काटी गई उम्र हूँ
जिसे नदी द्वारा काटी गई मिट्टी का पर्याय
हो जाना चाहिए था!
000

कजरी के गीत मिथ्या हैं

अगले कार्तिक में
मैं बारह साल की हो जाती
ऐसा माँ कहती थी
लेकिन जेठ में ही मेरा
ब्याह करा दिया गया
ब्याह शब्द से
डर लगता था
जब से पड़ोस की काकी
जल के एक दिन मर गई
मरद की मार
और पुलिस की लाठी से
मरी हुई देहों का पंचनामा नहीं होता
न ही रपट लिखाई जाती है
नैहर में हम हर साल सावन में कजरी गाते
थे
'तरसत जियरा हमार नैहर में
कहत छबीले पिया घर नाहीं
नाहीं भावत जिया सिंगार नैहर में'
गीतों में ससुराल जाना अच्छा लगता है
लेकिन कजरी के गीतों से
ससुराल कितना अलग होता है
नैहर और ससुराल
दो गाँवों से ज़्यादा दूरी का
मैंने व्यास नहीं देखा
न ही इससे ज़्यादा घुटन
मैं घुटन से तंग हूँ
लेकिन सब कुछ पीछे छोड़कर
कहीं नहीं जा सकती
विवाहित स्त्रियों का भाग जाना
क्षम्य नहीं होता
उनको जीवित जला दिया जाना
क्षम्य होता है
कुछ घरों की बच्चियाँ
सीधे औरत बन जाती हैं
लड़कियाँ नहीं बन पातीं
कजरी के गीत मिथ्या हैं
जीवन में कजरी के गीतों-सी मिठास नहीं
होती!
000

मैं लाशें फूँकता हूँ

मेरे दुख में विसर्ग नहीं है
मेरे घर की औरतें
बिना पछाड़ खाए गिरा करती हैं
मैं लाशें फूँकता हूँ
जैसे जलती लाश की ऊष्मा से जीवन तपता
है
जैसे अधजली लाशों के अस्थि-चर्म जलते
हैं
जैसे वेदना से हृदय गर्हित है
विरह में आँखें रोती हैं
सुहागन के शव के गहने जलते हैं
मैं लाशें फूँकता हूँ
लेकिन उस तरह नहीं
जैसे फूँकी हैं तुमने दंगों में बस्तियाँ
झोंकी हैं तुमने ईंट के भट्ठों में
फुलिया और गोधन की ज़िंदगियाँ
मैं लाशें फूँकता हूँ किंतु मेरी एक जाति है
जैसे ऊना में चमड़ा खींचने वालों की
इस देश में नाली-गटर में उतरने वालों की
समय के घूमते चक्र में क्या कुछ नहीं
बदला
राजशाही से लोकशाही
बर्बरता से सभ्यता
मगर लाशों को फूँकते ये हाथ नहीं बदले
न इनकी जाति न मुस्तक़बिल
मात्र घाट के जलते शव
हैं, पार्श्व में सन्नाटा
और जीवन मृगतृष्णा
मैं लाशें फूँकता हूँ
मेरे दुख में विसर्ग नहीं है
000

मनीष कुमार यादव
HIG 6, B2, कात्यार अपार्टमेंट, निकट
पूनम हॉस्पिटल, देवघाट झलवा, प्रयागराज,
पिन कोड -211012 उप्र
मोबाइल- 8299887121

भाषांतर

अंग्रेज़ी कवि जॉन हे की कविताओं का अनुवाद

अनुवाद- उषा देव

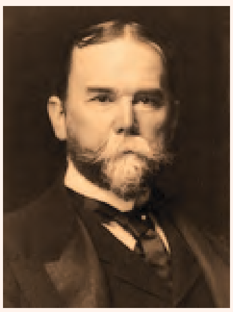

जॉन हे (1838-1905)

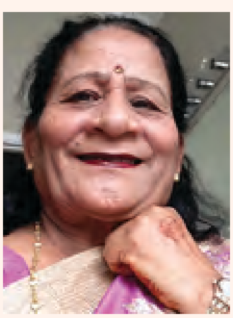

उषा देव
614 चैल्सडन ड्राइव, डरहम, नॉर्थ कैरोलाइना -27713, यूएसए
मोबाइल:948-329-7669
ईमेल- devmahendra1@yahoo.com

'द एनचांटेड शर्ट'
जादुई कमीज़

राजा लाचार था,ज़िंदगी से बेज़ार था
क्योंकि वह सोचता था वह बीमार था
खाता था पेट भर, सोता था चैन से,
फिर भी ग्रस्त था बीमारी के वहम से
गाल उसके लाल, ताकतवर चाल,
शरीर में शक्ति अपार थी,
फिर भी चिंता रात दिन,
ज़िंदगी उसकी बेकार थी।
वैद्य आए, हक़ीम आए,परखा ऊपर नीचे,
बोले,"महाराज आप तंदुरुस्त हैं,
सोइए चैन से अँखियाँ मींचे"
राजा तो राजा था भला
धृष्टता कैसे सह लेता?
दंड के रूप में उन सबके
सर धड़ से कटवा देता।
कई आए राजा को देखने,
सबका यही विचार था,
"राजा तंदुरुस्त है "
लेकिन राजा वहम का शिकार था।
सबका अंत जैसा होना था
वैसा ही तो हो गया।
अपने वहम के कारण राजा
विकलांग सा हो गया।
अन्त में एक वैद्य जी आए,
चिकित्सा विज्ञान पढ़ा न था।
दवा दारू का कुछ भी
उनकी बुद्धि को पता न था।
लेकिन दुनिया देखी थी,
जग देखा कुछ अक़्ल में था।
वहम का इलाज अनोखा होगा
इतना उनकी समझ में था
बोले "महाराज गंभीर बीमारी है
लेकिन इलाज बहुत आसान।
प्रसन्न व्यक्ति की क़मीज़ पहन लें
समस्या का होगा समाधान।"
सारे राज्य में घुड़सवार और
गलियों में दरबारी दौड़े,
कुछ नागरिक दुखी बहुत थे,
कुछ थे पीड़ित थोड़े-थोड़े।
पैसे वाले धन से दुखी थे,
निर्धनों का जीवन था शाप,
कोई बिन औलाद दुखी था,
कोई छह बच्चों का बाप।
मर्द कहते हम औरत होते,
औरतें चाहें बनना मर्द,
सबकी सोच विचार पर
अज्ञान की चढ़ी थी गर्द।
अन्त में लगा उन्हें मिल गया
जिस के लिए वह आए दूर।
दिखने में निर्धन सा दिखता,
लेकिन चेहरे पर था नूर।
बोले,"ख़ुश दिखते हो तुम
अपनी क़मीज़ हमें दो उधार,
राजा पहन कर स्वस्थ हो जाएँ,
आजकल वह हैं बीमार।"
लोट के धरती पर वह बोला,
"मैं तो ख़ुश हूँ लेकिन
मेरे पास तो क़मीज़ नहीं,
निर्धन होने पर भी मुझ में
दुख नाम की चीज़ नहीं।"
राजा को अपनी नादानी का
सच्चा एहसास हुआ,
प्रजा हित करते-करते,
बीमारी का मिट त्रास गया।
राजा स्वस्थ, हुई जनता सुखी,
यूँ अन्त हुआ कहानी का।
पर हित में जीवन निकले,
सोचो न लाभ या हानि का।
000

'द वाइट फ़्लैग'
सफ़ेद पताका

मैंने प्रेमिका को भेजे दो फूल,
जानना था सच, या थी मेरी भूल।
एक सफ़ेद ताज़ा गिरी बर्फ़ सा,
दूसरा शर्मीला शाही लाल,
लगता जलती ज्वाला जैसा।
यह मेरी भाग्य परीक्षा थी,
उस रात की मुझे कितनी प्रतीक्षा थी।
मेरे प्रति ग़र होगा सच्चा प्यार,
तो शर्मीला लाल गुलाब चुनेगी।
यदि नहीं तो सर्दी की बर्फ़ जैसा,

केवल सफ़ेद गुलाब ही पहनेगी।
उस शाम उसे मिलने को कितना ही मैं उत्सुक था,
परन्तु उसे देख कर हृदय मेरा, अन्तराल तक डूब गया।
उसके सीने पर था देखा सफ़ेद गुलाब मुरझाया सा,
फिर भी उसके धीमे स्वर में, मैंने कुछ स्वागत तो पाया।
इक स्वर्णिम मुस्कान से उसके गाल पे लाल गुलाब खिला था।
सफ़ेद गुलाब की हार हुई, पर मेरे प्यार को प्यार मिला था।
000

ओबीडिएंस
आज्ञापालन

मेरी प्रेमिका कहती है "मुझसे प्यार मत करो"
मैं उसकी आज्ञा का पालन करता हूँ
इसलिए मैं उस से प्यार नहीं करता हूँ।
फिर भी उसके चमकते-दमकते बालों की सुन्दरता का अभी भी दम भरता हूँ।
उसकी युवा गर्वीली गर्दन, उसके होंठों की मुस्कान,
सितारों सी चमकती आँखें, वाणी में मीठे स्वरों की पहचान,
गालों में उठते-गिरते डिम्पल, गाल जो हैं नाज़ुक और कोमल।
उसके होंठों से निकले शब्द प्यार मेरा पा जाते हैं,
आज भी मेरे मस्तिष्क में उमड़-घुमड़ कर आते हैं।
वह शब्द जो बुद्धिमत्ता, प्रसन्नता अथवा अनंत के हों,
मेरे मन को आशा के झूले में झुला जाते हैं।
उसके कपड़े, दस्ताने यहाँ तक कि उसके जूते,
मैं उन सबसे प्यार करता हूँ,
क्योंकि वह उसके बदन को हैं छूते।
000

ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

मुझको जिस्म बना कर देख
इक दिन मुझमें आकर देख
जिसका उत्तर तू ख़ुद है
अब वो प्रश्न उठाकर देख
अच्छा अपने 'ख़ुद' को तू
ख़ुद में ही दफ़नाकर देख
क्या समझा तू दुनिया को
दुनिया को समझाकर देख
तू अपनी ज़द में है क्या
अपना हाथ बढ़ाकर देख
000

चुप्पी से बतियाऊँ कैसे
ये लहजा अपनाऊँ कैसे
रहना और कहीं नामुमकिन
ख़ुद में भी रह पाऊँ कैसे
जिनका उत्तर केवल तुम हो
ऐसे प्रश्न उठाऊँ कैसे
सब-कुछ समझे बैठा है वो
फिर उसको समझाऊँ कैसे
जिसने तुमको दुश्मन समझा
मैं उसका हो जाऊँ कैसे
किसने दर्द दिया है मुझको
सबको सच बतलाऊँ कैसे
मुझको ख़ुद पर शक होता है
पर इल्ज़ाम लगाऊँ कैसे
000

तू तो एक बहाना था
मुझको धोखा खाना था
मौसम रोज़ सुहाना था
उसका आना- जाना था
आईना दिखलाना था
उसको यूँ समझाना था
आज ज़माना क्या जाने
मुझसे एक ज़माना था
कबिरा की उस चादर का
मैं ही ताना- बाना था
000

मुझको अपने पास बुला कर
तू भी अपने साथ रहा कर
अपनी ही तस्वीर बना कर
देख न पाया आँख उठा कर
बे- उन्वान रहेंगी वर्ना
तहरीरों पर नाम लिखा कर
सिर्फ़ ढलूँगा औज़ारों में
देखो तो मुझको पिघला कर
सूरज बन कर देख लिया ना
अब सूरज-सा रोज़ जला कर
000

रिश्ता भूल गया हूँ, देखो
क्या था भूल गया हूँ, देखो
ख़ुद को, उनको भूल गया हूँ
क्या-क्या भूल गया हूँ, देखो
उनसे मिलने जाना तो था
रस्ता भूल गया हूँ, देखो
जिसमें ज़िक्र तुम्हारा भी था
क़िस्सा भूल गया हूँ, देखो
ख़ुद भी क्या हूँ याद नहीं है
कितना भूल गया हूँ, देखो
घर अब कैसे बनवाऊँगा
नक़्शा भूल गया हूँ, देखो
तुम भी तो इक सपना ही थे
सपना भूल गया हूँ, देखो
000

विज्ञान व्रत
एन - 138, सैक्टर - 25,
नोएडा - 201301
मोबाइल- 9810224571
ईमेल- vigyanvrat@gmail.com

गीत

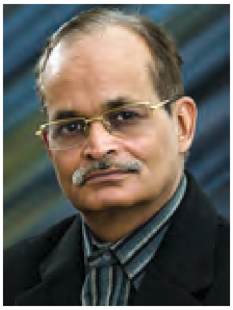

सूर्य प्रकाश मिश्र के गीत

ज़िद

जाने किस बात पर मुस्कुराते हो तुम
जाने किस बात पर रूठ जाते हो तुम
फिर भी बचपन बहुत याद आते हो तुम
भोले बचपन बहुत याद आते हो तुम

वो पुरवा के झोंकों सी चलने की ज़िद
पहली बरसात के साथ घुलने की ज़िद
अपने बस्ते में कागज की नावें लिये
वो दबे पाँव घर से निकलने की ज़िद

अपने भाई की थाली में खाने की ज़िद
उसके कुर्ते में खुद को समाने की ज़िद
अपने बाबा को जाता हुआ देखकर
उनकी उँगली पकड़ साथ जाने की ज़िद

रोज़ परियों की रानी से मिलने की ज़िद
आसमाँ के सितारों को गिनने की ज़िद
माँ के सीने से लग आँख मूँदे हुए
उसकी बाँहों के झूले में हिलने की ज़िद

घर से बाहर दोपहरी में जाने की ज़िद
अधपके आम चोरी से खाने की ज़िद
रूठ बैठे हैं जो यार बिन बात के
उनको चुपके से घर से बुलाने की ज़िद

रोज़ कोयल को छिप कर चिढ़ाने की ज़िद
सोये तोते को मिर्ची खिलाने की ज़िद
माँ की आँखों से बच कर मिले जो अगर
छिपके माचिस की तीली जलाने की ज़िद

बिन मुँडेरी के छत पर उतरने की ज़िद
उड़ रही तितलियों को पकड़ने की ज़िद
अपने नाज़ुक से हाथों में पत्थर लिये
लालची बन्दरों से अकड़ने की ज़िद

अपनी चर्खी में धागे भराने की ज़िद
आसमाँ में पतंगें उड़ाने की ज़िद
छोटे हाथों में भारी सी चर्खी लिये
ठान लेना सभी को हराने की ज़िद

पोटली भर ज़िदें ले के आते हो तुम
हर सुबह इक नई ज़िद मिलाते हो तुम
फिर भी बचपन बहुत याद आते हो तुम
भोले बचपन बहुत याद आते हो तुम

000

उड़ता घोड़ा

वो उड़ता घोड़ा कहाँ गया

नित नए-नए सपने लेकर
मिलता था कभी किताबों में
फिर ले जाता था साथ-साथ
अनजान सुनहरे ख़्वाबों में

परियों की राजकुमारी का
वो ख़्वाब सुनहरा कहाँ गया

हल करना अनसुलझे सवाल
उँगली के नाज़ुक पोरों से
वो चाहत भूल नहीं पाती
बस्ते में छिपे टिकोरों से

जो उड़ता था बन कर जहाज़
वो पन्ना कोरा कहाँ गया

चटपटा कुरकुरा चनाज़ोर
चटखारे खट्टी इमली के
वो दबे पाँव पीछे जाना
फूलों पर बैठी तितली के

रखा था जिसे घोंसले में
बुलबुल का जोड़ा कहाँ गया

वो दुनिया कितनी सुन्दर थी
जो मुट्ठी में आ जाती थी
बस इक मुट्ठी दुनिया लेकर
ज़िंदगी बाग बन जाती थी

मस्ताना, मस्ती का मौसम
वो पवन झकोरा कहाँ गया

सिर पर फिरती माँ की उँगली
मुख पर फिरता माँ का आँचल
फिर काश लौट कर आ जाते
वो स्वप्न सरीखे सुन्दर पल

माँ के चुल्लू का वो गिलास
वो स्नेह कटोरा कहाँ गया

000

सूर्य प्रकाश मिश्र
बी 23/42 ए के, बसन्त कटरा, गाँधी चौक, खोजवा (दुर्गाकुंड), वाराणसी 221001, उप्र
मोबाइल: 09839888743
ईमेल- surya.misra1958@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

आख़िरी पन्ना

हिन्दी पखवाड़े के ही समय पर पितृपक्ष या श्राद्ध पक्ष भी आता है

इस बार ऐसा हो रहा है कि संपादकीय और आख़िरी पन्ना दोनों एक ही विषय पर लिखे गए हैं। असल में इसका कारण यह है कि अभी सितम्बर बीता है। सितम्बर का माह, जिसमें हिन्दी का पखवाड़ा आता है। सरकारी पखवाड़ा। और संयोग की बात यह है कि अक्सर सितम्बर के ही महीने में तथा बहुधा हिन्दी पखवाड़े के ही समय पर पितृपक्ष या श्राद्ध पक्ष भी आता है। दोनों की अवधि पन्द्रह दिनों की ही होती है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि हिन्दी पखवाड़ा वह पखवाड़ा है, जिसमें सरकारी संस्थाएँ मिल कर हिन्दी का श्राद्ध करती हैं। इसलिए करती हैं, क्योंकि श्राद्ध करने के लिए बाक़ायदा फण्ड आता है। यदि नहीं करेंगी तो फण्ड में से कमाने का अवसर ही नहीं मिलेगा। कमाना है तो श्राद्ध तो करना ही होगा। हिन्दी पखवाड़े में सरकारी संस्थाएँ तलाश में जुट जाती हैं कि किस-किस का कर सकते हैं...? क्या...? सम्मान। पचास रुपये का गुलदस्ता, सौ रुपये का शॉल, बीस रुपये का नारियल, बीस रुपये का समोसा तथा दस रुपये की चाय; कुल मिलाकर दो सौ रुपये का पड़ता है एक साहित्यकार। बिल में काग़ज़ों पर यह साहित्यकार दो हज़ार रुपये का पड़ता है। यदि पाँच साहित्यकार मिल गए तो हज़ार का वास्तविक तथा दस हज़ार का काग़ज़ी ख़र्च होता है। मतलब यह कि सरकारी संस्था को नौ हज़ार रुपये की शुद्ध बचत होती है। श्राद्ध पखवाड़े में जिस प्रकार लोग ब्राह्मणों को तलाशते रहते हैं, इसी तरह इस हिन्दी श्राद्ध पक्ष में विभिन्न सरकारी संस्थाओं के राजभाषा विभाग साहित्यकारों की तलाश में रहते हैं। छोटे शहरों तथा क़स्बों में जब कोई नया नहीं मिलता तो पिछले साल वाले को ही एक बार फिर से निबटा दिया जाता है। कौन देखने या पूछने आता है कि आपने पिछली बार किस का किया था और इस बार किस का कर रहे हैं। असल मतलब तो बिलों से होता है। ख़ैर यह तो हुई एक बात... आइए अब दूसरे पक्ष की बात करते हैं। पिछले दिनों एक महोदय मेरे संपर्क में आए। यह महोदय एक ऐसे व्यक्ति के सुपुत्र हैं, जिनके घर की सुई से लेकर घर के बाहर खड़ी हुई कार तक, सब कुछ हिन्दी के कारण ही संभव हो पाया। वह अब इस दुनिया में नहीं रहे और उनके सुपुत्र अपने पिताश्री को लेकर कुछ करना चाहते थे। उसी के चलते कहीं से घूमते-फिरते वे मुझ तक पहुँचे। नामी व्यक्ति के सुपुत्र थे, जिनका मैं स्वयं भी बड़ा प्रशंसक रहा हूँ, तो ज़ाहिर सी बात है कि उनको मैंने बहुत मान-सम्मान दिया तथा पूरा सहयोग करने का आश्वासन भी दिया। कुछ दिनों मोबाइल पर चर्चा करते रहने के बाद मैंने उनको उनके द्वारा चाही गई सामग्री ईमेल द्वारा भेज दी। कुछ ही देर में उनका मेरे मोबाइल पर संदेश आया कि कृपया फ़ाइल हिन्दी में नहीं अंग्रेज़ी में भेजिए। जैसा कि मैंने पहले बताया कि उन महोदय के पिताजी द्वारा घर में लगाई गई हर ईंट, सीमेंट का हर कण और रेत का हर ज़र्रा, हिन्दी द्वारा की गई अपार कमाई के द्वारा ही जुटाया गया था, जिस घर में आज वे स्वयं निवास कर रहे हैं। मेरे मन में कहीं कुछ टूट गया, क्या हिन्दी केवल पैसा कमाने का ज़रिया बन कर रह गई है। जो लोग हिन्दी का उपयोग कर के पैसा कमाते हैं, वे हिन्दी में बात करते हुए या हिन्दी का उपयोग करते हुए क्यों शरमाते हैं? हरिशंकर परसाई ने लिखा था कि दिवस कमज़ोर का मनाया जाता है, शक्तिशाली का नहीं मनाया जाता। महिला दिवस होता है, पुरुष दिवस नहीं होता, शिक्षक दिवस होता है, थानेदार दिवस नहीं होता। हिन्दी की भी लगभग वही स्थिति है, उसका दिवस भी इसलिए मनाया जाता है कि वह भी कमज़ोर और ग़रीब भाषा समझी जाती है। अगर ऐसा नहीं है, तो फिर ऐसा क्यों है कि हिन्दी के साहित्यकार जब फ़ेसबुक पर या अन्य सोशल मीडिया पर इन दिनों पढ़ी जा रही पुस्तकों की बात करते हैं, या अपनी पसंदीदा पुस्तकों की बात करते हैं, तो अधिकांश पुस्तकें अंग्रेज़ी की ही होती हैं। यह हिन्दी से नाम कमा रहे साहित्यकारों का हाल है, तो बाक़ी लोग अगर ऐसा सोचते हैं तो उनका क्या दोष...? **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक "नर्मदा के पथिक" का विमोचन मध्यप्रदेश विधानसभा के मानसरोवर ऑडिटोरियम में एक गरिमामय समारोह में हुआ। मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की नर्मदा परिक्रमा पर आधारित पुस्तक के लेखक श्री ओमप्रकाश शर्मा हैं।

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की नर्मदा परिक्रमा पर आधारित पुस्तक "नर्मदा के पथिक" का विमोचन करते अतिथिगण।

श्री दिग्विजय सिंह, श्रीमती अमृता राय तथा पंकज सुबीर ने "नर्मदा के पथिक" के विमोचन के अवसर पर अपने विचार व्यक्त किए।

"नर्मदा के पथिक" के लेखक श्री ओमप्रकाश शर्मा को श्री दिग्विजय सिंह तथा पूर्व सांसद श्री रामेश्वर नीखरा ने सम्मानित किया।

"नर्मदा के पथिक" के विमोचन के अवसर शिवना प्रकाशन की तरफ़ से अतिथियों को स्मृति चिह्न तथा पुस्तकें प्रदान की गईं।

विमोचन स्थल पर शिवना प्रकाशन के पुस्तक बिक्री केंद्र पर श्री दिग्विजय सिंह, श्रीमती अमृता राय तथा मप्र के पूर्व मंत्री श्री पी. सी. शर्मा।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर तथा समाजसेवी श्री हितेन्द्र गोस्वामी ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर तथा समाजसेवी श्री हितेन्द्र गोस्वामी ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ मुख्य नगरपालिका अधिकारी श्री संदीप श्रीवास्तव, समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल, प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव बड़गुर्जर तथा समाजसेवी श्री हितेन्द्र गोस्वामी ने किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव, समाजसेवी श्री सुनील भालेराव तथा पत्रकार श्री आकाश माथुर ने किया। बालिकाओं से चर्चा करते श्री समीर यादव।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।